प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

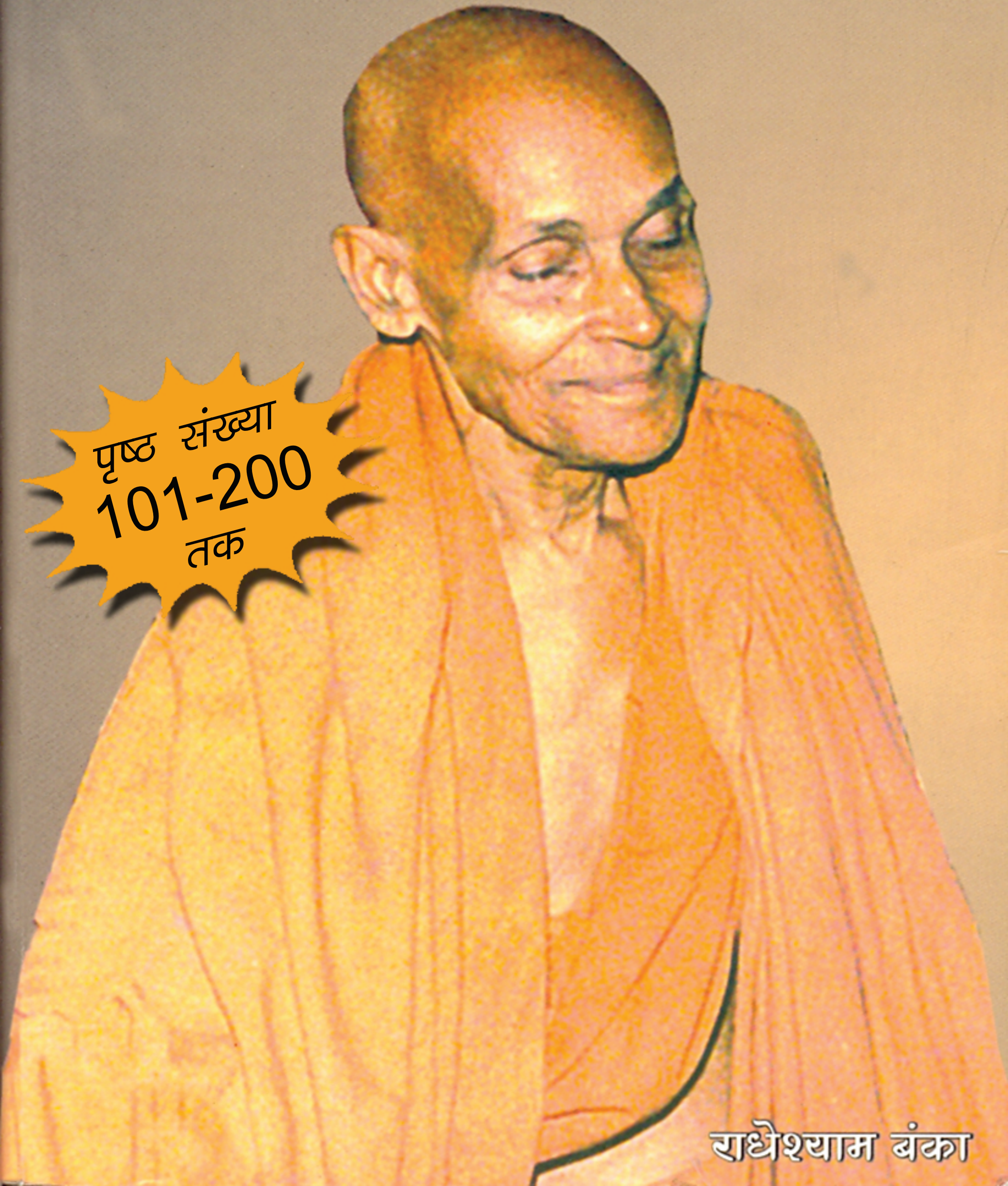

पृष्ठ संख्या 101-200 तक

राधेश्याम बंका

बरसाने के मन्दिर में

सन् १९६५ की ११ फरवरीके दिन मथुरामें श्रीकृष्ण जन्मभूमिपर भागवत भवनका शिलान्यास हुआ। इसीके निमित्तसे बाबूजी गोरखपुरसे मथुरा गये थे। शिलान्यासका उत्सव बहुत विशाल रूपसे मनाया गया था। तब बाबूजी मथुरामें तीन सप्ताह तक रहे। वहाँ समय-समयपर व्रजमण्डलके अनेक महान संतोंके पास जा-जा करके उन्होंने उनके दर्शन किये। बाबूजीके साथ बाबा तो रहते ही थे।

इस तीन सप्ताहकी अवधिमें एक बार बरसाना जानेका भी कार्यक्रम बन गया। इस दिन श्रीश्रीजीके मन्दिरमें सभी भक्तोंने प्रसाद पाया। अनुमानतः सात-आठ सौ भक्तोंने छक करके प्रसाद पाया होगा। प्रसादकी व्यवस्था और व्ययका सारा भार श्रीजयदयालजी डालमियाने अपने ऊपर ले लिया था। बाबा तथा बाबूजी तो बरसाना कारसे गये थे, बाकी सब लोग बससे गये थे। श्रीश्रीजीके मन्दिरमें भोग लगे, इसके बहुत पहले ही भक्त लोग वहाँ पहुँच गये थे। श्रीश्रीजीका दर्शन पाकर सभी भक्तोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रीश्रीजीके मन्दिरके गर्भ-गृहकी जो चौखट है, उसके पास लकड़ीका एक बड़ा और मजबूत घेरा है। यह घेरा चौखटसे लगभग चार-पाँच फीटकी दूरीपर है। यह घेरा इसलिये है कि इसके अन्दर पुजारीजी खड़े रह सकें, कोई उनका स्पर्श न कर सके तथा वे सुविधा पूर्वक अमनिया नैवेद्य लोगोंसे ग्रहण कर सकें और भक्तोंको प्रसाद दे सकें।

बाबूजी और बाबा मन्दिरमें काफी पहले आ गये थे। मन्दिरमें आकर उन्होंने युगल सरकारके दिव्य श्रीविग्रहका दर्शन किया। दर्शन करके बाबूजी तो एक किनारे बैठ गये, पर बाबा उसी घेरेका सहारा लेकर खड़े हो गये। बाबाने अपने शरीरका सारा भार काठके उस घेरेपर अपने दोनों हाथोंके द्वारा छोड़ रखा था और उनकी दोनों आँखें श्रीश्रीजीके विग्रहपर टिकी हुई थीं। हम कई लोग बाबाके आस-पास खड़े थे केवल इस बातकी सावधानीके लिये कि किसी स्त्रीसे अथवा उसके वस्त्रसे बाबाका स्पर्श न हो जाय। वे घेरेके सहारे खड़े-खड़े कुछ-कुछ नहीं, बहुत बोल रहे थे। उनके अधर खूब हिल रहे थे और उनकी आवाज हमारे कानोंमें साफ-साफ पड़

रही थी, पर हम लोग यह नहीं समझ पा रहे थे कि वे क्या बोल रहे हैं। उनकी भाषा वे ही जानें, परन्तु यह स्पष्ट लग रहा था कि वे अपनी 'किसी भाषा'में श्रीश्रीजीसे वार्तालाप कर रहे हैं। इसके साथ ही बाबा द्वारा एक और चेष्टा लगातार हो रही थी। उनके दोनों हाथ तो घेरेपर टिके हुए थे, किन्तु वे रह-रह करके अपने पैरको कभी उठाते और गिराते थे। कभी दाहिना पैर और कभी बाँया पैर उठाने-गिरानेका क्रम चलता रहा। शरीरका भार तो घेरेपर था ही, किन्तु जब बाँयें पैरका घुटना मुड़ता तो बाँयी एड़ी बाँयें जंघेतक आ जाती और इसी प्रकारकी बात दाहिने पैरके साथ थी, अर्थात् कभी दाहिनी एड़ी दाहिने जंघेतक आ जाती। यह भावमयी स्थिति लगभग पौन घंटेतक बनी रही।

बाबाकी इस भावमयी स्थितिकी ओर बहुत लोगोंका ध्यान आकृष्ट हो गया। अनेक लोग बाबाके पास, परन्तु कुछ हटकर बैठ गये और उनकी इस भावमयी स्थितिको देखते रहे। इन दर्शकोंमें सम्मान्य लाला श्रीहरगूलालजी भी थे, जो वृन्दावनके अति विख्यात रसिक और रसज्ञ हैं। श्रीडालमियाजीके आत्मीयता भरे अनुरोधपर सम्मान्य लालाजी श्रीजीके मन्दिरमें भोगकी तथा भक्तोंके भोजनकी सारी व्यवस्था सँभालनेके लिये वृन्दावनसे बरसाना आये थे। बाबाकी इस भावमयी स्थितिको देखकर वे भी परम विस्मयान्वित हो रहे थे।

सम्मान्य श्रीलालाजी इस दृश्यसे इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपना एक ग्रन्थ 'प्रान-पुष्पांजलि' बाबाको बादमें भेंट स्वरूप प्रदान किया, बादमें माने कुछ साल बाद। इस ग्रन्थमें प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्णके एकान्त निकुञ्जकी अन्तरंग केलिका वर्णन है। यह अन्तरंग केलि सार्वजनिक वस्तु नहीं है, अपितु मात्र सुयोग्य अधिकारीके लिये अवलोकनीय है। यह वस्तु एक मात्र अधिकारीके हाथ लगे, इसलिये ऐसा सुननेमें आया कि सम्मान्य लालाजीने 'प्रान-पुष्पांजलि' ग्रंथकी केवल दो सौ प्रतियाँ ही आर्ट पेपरपर छपवायी थी, उसीमेंसे उन्होंने एक प्रति बाबाके पास भेंट स्वरूप भेजी थी।

प्रसंगानुरोधसे प्रान-पुष्पांजलिकी चर्चा बीचमें आ गयी इसीलिये कि सम्मान्य लालाजी बाबाकी उस भावमयी स्थितिपर बार-बार बलिहार जा रहे थे। बाबा घेरेका सहारा लिये हुए श्रीश्रीजीके समक्ष बहुत देरतक खड़े रहे।

भोगका समय हो जानेपर श्रीश्रीजीके मन्दिरमें पट आ गया। पटके बन्द होनेके बाद भी बाबा उसी प्रकार कुछ देरतक खड़े रहे। थोड़ी देर बाद इनके लिये एक आसन घेरेसे हटकर लगाया गया और बाबूजीने बाबाको वहाँ बैठाया।

* * * * *

मंगल-प्रवाहिणी भगवती गंगा

प्रयाग-निवासी मानस-कथावाचक पण्डित श्रीओंकारनाथजी मिश्र जब भी गोरखपुर आते थे, तब बाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका पधारते ही थे। उनके पधारनेपर बाबा उनसे कुछ-न-कुछ सुनते ही थे, भले ही वे केवल बारह-पन्द्रह मिनट ही कथा सुनायें। आदरणीय श्रीमिश्रजीने जब अपना आसन ग्रहण किया तो बाबाने कुशल समाचार पूछ लेनेके बाद कुछ हरिकथा सुनानेके लिये उनसे प्रार्थना की। आदरणीय श्रीमिश्रजीने कहा – मेरे पास अपना है ही क्या, जो मैं बोलूँ? जो आप मेरे हृदयमें भरते हैं, वही मेरे अधरोंसे बाहर निकल पड़ता है। मैं तो प्रतिध्वनि मात्र हूँ। आप ही मुझपर कृपा करें। मेरे उर-प्रेरक और उर-परिपूरक आप ही हैं।

बाबाने कहा – आपका यह दैन्य आपके संत-स्वभावका परिचायक है, परंतु सबके ही हैं 'उर-प्रेरक रघुबीर'। घाट हो चाहे हरिद्वारका अथवा कानपुरका अथवा वाराणसीका अथवा पटनाका, परंतु सभी स्थानोंकी गंगाजीमें जल गंगोत्रीसे ही आता है। सभीके हृदयमें प्रेरणा वे भगवान श्रीरघुवीर ही करते हैं। सबको भाव और भाषाका दान भगवानसे ही मिलता है।

बाबाने तो अपनी बात समझानेके लिये श्रीगंगाजीका उदाहरण मात्र दिया था, परंतु इसीपर बाबाने आदरणीय श्रीमिश्रजीको अपने जीवनके दो प्रसंग सुना दिये –

बाबा तथा बाबूजी एक बार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गये हुए थे। ठहरे थे डालमियाकोठीमें, जो एकदम श्रीगंगाजीके तटपर ही थी और है। एक दिन बाबा गंगा-स्नान करनेके लिये धीरे-धीरे चलते हुए चले जा रहे थे, तभी बाबूजी घबराये हुए-से आये और चिन्तापूर्ण भाषामें कहने लगे – जयहरि (सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमियाका बालक) नहीं मिल रहा है। जयदयालकी ओरसे और हमलोगोंकी ओरसे बहुत देरसे खोज हो रही है। जयहरिके नहीं मिलनेसे

लोग मनमें भाँति-भाँतिकी आशंका कर रहे हैं कि कहीं गंगाजीमें डूब न गया हो, उसका पैर फिसल गया हो और बह गया हो। उसकी खोजमें लोग यत्र-तत्र दौड़-धूप कर ही रहे हैं।

बाबाने बाबूजीकी बात सुन ली तथा पूर्ववत् शान्त भावसे चलते-चलते गंगाजीके किनारे आये और तटपर बैठ गये। बाबाको यह प्रिय नहीं कि तुरन्त स्नान करके तुरन्त वापस लौट चलें। वे कुछ देरतक गंगातटपर बैठते तथा बैठकर धाराका दर्शन करते हुए माँ गंगासे कुछ बातें करते। अपने उसी अभ्यासके अनुसार बाबा गंगातटपर आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बाबाने भगवती श्रीगंगाके प्रवाहमें प्रवेश किया और कटितक जलमें पहुँचकर खड़े हो गये। आनेके पूर्व बाबूजीने जयहरिके खो जानेवाली बात सुनायी ही थी, उस बातकी स्मृति आते ही बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की – माँ! श्रीजयदयालजीका पुत्र जयहरि नहीं मिल रहा है। उसकी बड़ी खोज हो रही है। क्या वह तेरे अन्दर है? यदि तेरे अन्दर हो तो बता दे।

इसके बादकी घटनाका वर्णन करते हुए बाबा बताने लगे – मेरे द्वारा ऐसी प्रार्थना होते ही बड़ी मधुर ध्वनि सुनायी दी। मेरे समक्ष प्रत्यक्ष रूपमें न कोई थी और न कोई था। मुझे कोई भी दिखलायी नहीं दिया, परंतु धाराकी लहरोंसे निकलकर आती हुई एक अति मधुर ध्वनि सुनायी दी कि 'मेरे लाल! वह मेरे अन्दर नहीं है'।

यह सुनते ही बाबाका जी भर आया कि आज माँ गंगाकी वाणी सुननेको मिली। वे जल-प्रवाहसे तुरन्त बाहर निकलकर शीघ्रतापूर्वक बाबूजीके पास गये और कहने लगे – जयहरि श्रीगंगाजीके अन्दर तो नहीं है। अब वह जहाँ कहीं भी हो, उसकी आप खोज करवाइये, पर यह निश्चित है कि वह गंगाजीके अन्दर नहीं है।

* * *

बाबाने अपना दूसरा प्रसंग सुनाया –

गंगादशहराका दिन था। सूर्यास्तके समय बाबा गंगातटके एक एकान्त स्थानपर बैठे हुए थे। गंगादशहराका दिन होनेके कारण भक्तोंने गंगाजीको दीप-दान किया था। वे दीप गंगाजीकी लहरियोंपर बहते हुए बड़े भले लग रहे थे। लहरियोंके ऊपर दीपोंके लहरानेका दृश्य बड़ा ही मनोहारी था। ये दीपक लहरियोंके साथ खेल करते हुए बहते चले जा रहे थे। इस दृश्यको देखकर

बाबाके मनमें यह भाव आया – मैं भी माँ गंगाकी अर्चना करूँ, पर यह हो कैसे ? मैं तो एक भिक्षुक संन्यासी हूँ। मेरे पास तो ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिससे माँकी अर्चना सम्पन्न हो सके।

अर्चनाकी स्फुरणा उदित होनेपर बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की – माँ ! मैं तेरा वत्स हूँ। तू मेरी माँ है। तेरी वस्तु मेरी ही है। लहरोंपर इतने दीपक बह रहे हैं, एक दीपक मुझको दे दे। मेरे पास एक दीपक भेज दे। उस दीपकको लेकर, फिर उसी दीपकसे तेरी अर्चना करके मैं उसे तेरी धाराको अर्पित कर दूँगा। मानसिक रूपसे जो स्तवन-अर्चन-वन्दन मुझे करना है, वह तो होगा ही, पर तू मुझे एक दीपक दे दे।

बाबाके द्वारा ऐसी प्रार्थनाके होते ही आश्चर्य यह हुआ कि दूर धारामें जो कई दीपक बह रहे थे, उनमेंसे एक दीपक बाबाकी ओर लहरियोंपर नाचता हुआ अग्रसर होने लगा। लहरियोंके मस्तकपर उस दीपकका नाचना भी अनोखा था। कभी दाहिने झुकता हुआ, कभी बाँयें झूमता हुआ, कभी ऊपर उठता हुआ, कभी नीचे ढरकता हुआ, कभी इस ओर अर्द्ध गोलाकार चक्कर काटता हुआ, कभी उस ओर अर्द्ध गोलाकार सहज बहता हुआ, इस प्रकार नर्तन करता हुआ वह दीपक बाबाकी ओर बढ़ने लगा। वे लहरियाँ, सचमुच लहरियाँ नहीं थीं, अपितु वे थीं माँ गंगाकी कर-वल्लरी। माँ अपने हाथोंसे ही वह दीपक बाबाको दे रही थी। वह दीपक इतना समीप आ गया था कि कठिनतासे एक हाथकी दूरीपर होगा। कहाँ तो वह तब था बहुत अधिक दूर धारामें बहता हुआ और कहाँ वह अब है इतने अधिक समीप किनारेपर लगा हुआ ! बाबाने वह दीपक अपने हाथपर ले लिया। भाव भरे मनसे बाबाने माँकी अर्चना और स्तुति की और फिर माँके चरणोंमें वह दीपक अर्पित कर दिया।

* * * * *

'श्रीकृष्ण चरितामृत' पर शुभाशंसन

परम सम्मान्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रको विधाताने श्रीराधाबाबाके सहोदर अग्रज कहलानेका सौभाग्य प्रदान कर रखा है। आप हृदयसे भक्त हैं। भक्तिकी निधि तो आपको अपने धर्म-परायण कुलसे धरोहरके रूपमें मिली है। प्रौढ़ावस्थामें पण्डितजीकी भक्ति-भावनामें बाढ़ आ गयी। भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंमें उनका मन रमने लगा। लीला-चिन्तनसे उत्पन्न होनेवाली रस-धारा

उनके तन-मन-जीवनको भाव-विभोर बनाये रहती। उनके अन्तरकी भावोद्रेकता कविताके रूपमें बहने लगी। पण्डित श्रीतारादत्तजीने ललित भाषामें जो लीला काव्य लिखा है, उसका नाम है 'श्रीकृष्ण चरितामृत'। श्रीकृष्ण चरितामृतका प्रणयन जब पूर्ण हो गया, तब उसकी पाण्डुलिपि पण्डित श्रीतारादत्तजीने अपने गाँवसे गोरखपुर बाबूजीके पास भेज दी। मेरा अनुमान है कि यह प्रसंग सन् १९६५ के आस-पासका होना चाहिये। पाण्डुलिपि भेजकर उन्होंने यह अनुरोध किया कि जब अनुकूल और प्रसन्न अवसर मिले, तब यह काव्य स्वामीजीको सुना दिया जाय।

पण्डित श्रीतारादत्तजीके अनुरोधको आज्ञा मानकर बाबूजीने यह काव्य बाबाको सुनाया। पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण चरितामृत' काव्यको सुनकर बाबाको बड़ा सुख मिला। उस सुखानुभूतिको उन्होंने चार छन्दोंमें व्यक्त किया। इन छन्दोंमें श्रीकृष्णलीलाके गायनकी सराहना की गयी है तो उसके साथ ही यह भी संकेतित हुआ है कि उनकी रुचिके अनुसार अपने जीवनको ढाल देनेमें ही सुन्दरता है।

वे चार छन्द इस प्रकार हैं –

सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उरपर लिखना, प्रियतम!
लिखते लिखते जब कर-पल्लव हो जाय अधिक चिकना प्रियतम!
लेना तुम पोंछ उसे अपने पीले दुकूलमें ही, प्रियतम!
देखूँगी मैं उन चिह्नोंपर सहचरियोंका बिकना प्रियतम!

रजनीको जब विराम देने आयेगी उषा सखी प्रियतम!
आयेंगी तब वे भी निकुञ्ज वातायनके समीप प्रियतम!
होगा फिर द्वार मुक्त भीतर होंगी अपलक सब वे प्रियतम!
बाहर अलिसे मुखरित होगा, फूलोंसे लदा नीप प्रियतम!

मंगल नीराजन होनेपर बाहर लायेंगी वे प्रियतम!
हम दोनोंको उनके पीछे पीछे चलना होगा प्रियतम!
कालिन्दीकी उन लहरों में हमको नहलायेंगी प्रियतम!
उनकी रुचि के साँचे में ही हमको ढलना होगा प्रियतम!

अतएव अभी से सच तुमको इंगित कर देती हूँ प्रियतम!
मैं नित्य अहो रंगस्थलकी जो नित्य नटी ठहरी प्रियतम!

हो नहीं समयसे पहले ही झंकृत यह रंग मंच प्रियतम!
इसलिये बनी बैठी हूँ मैं गूँगी एवं बहरी प्रियतम!

इन चार छन्दोंके अर्थ गम्भीर भी हैं और साधारण भी। गम्भीर अर्थमें बाबा निकुञ्ज लीलामें तन्मय होकर कह रहे हैं निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णसे। नित्य निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णने परम पवित्र चिन्मय लीलाका एक प्रस्ताव रखा और उसे सुनकर निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा कह रही हैं— वहाँ उस निकुञ्ज-भित्तिपर पुष्प-वृन्तसे और मृगमदके अनुलेपनसे चित्र मत बनाओ भला! यह इसलिये कि उन चित्रोंको चित्रांकित करते-करते तुम आत्म-विस्मृत हो जाओगे और मैं भी आत्म-विस्मृत हो जाऊँगी। वह चित्र मेरी सखियोंके लिये, मञ्जरियोंके लिये, सहचरियोंके लिये परम आह्लादका विषय बनेगा अवश्य, किन्तु मुझे उससे संकोच होगा। तुम्हारे उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होगी। इसीलिये कहती हूँ कि लिखना ही हो तो इन विविध रसमय चित्रोंको विहंगमका रूप देकर, लता-वल्लरियोंका रूप देकर, उनके अन्तरालसे व्यक्त होते हुए उन व्यक्त भावोंको मूर्त रूप देकर मेरे वक्षस्थलपर ही उसकी रचना करो। उसे मैं आवृत कर लूँगी। मेरी सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंका आह्लाद तो अक्षुण्ण रहेगा ही, साथ ही मेरे लिये निरर्थक संकोचका प्रश्न नहीं रहेगा। 'सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उर पर लिखना प्रियतम'।

तुम्हारे कर-पल्लव अनुलेपनकी मसृणता लेकर ऐसे मसृण बन जायँ कि तूलिका चले ही नहीं, तब उसे मेरे नील अरुण परिधानोंमें न पोंछकर अपने पीले दुकूलमें ही पोंछ लेना। बनाये हुए चित्र तो आवृत हो ही जायेंगे, परन्तु चित्र बननेके उपकरण स्वरूप अनुलेपनके पोंछनेका चिह्न तुम्हारे पिंगल दुकूलपर वर्तमान रहेगा। उसे मेरी सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ अवश्य देख लेंगी और उन चिह्नोंपर ही वे अपने आपको न्योछावर कर देंगी। देखो, ऊषा होने जा रही है, परन्तु मैं ठीक निर्णय नहीं कर सकती हूँ कि अभी कितनी देर है। कदाचित् रजनी अभी कुछ शेष रही हो, पर ऊषा आयेगी और रजनी अन्तर्हित होगी ही। श्रान्त रजनी मेरी सेवा करते-करते थक गयी है। इसे विश्राम देनेके लिये ही ऊषा आती है भला। वह मेरी अत्यन्त प्रिय सहचरी है। उसके लिये मैंने एक ही सेवा दे रखी है, अथवा मैं भूल गयी हूँ। प्रतिदिन कोई-न-कोई सेवा बतला देती हूँ और मैं समझती हूँ कि इसके लिये मैंने एक ही सेवा सौंपी है। कुछ भी हो, वह रजनीको विश्राम देनेकी सेवा तो करेगी ही। और देखो, जैसे

ही वह आयी कि उसके साथ मेरी सखियाँ-सहचरियाँ और मञ्जरियाँ अवश्य आयेंगी, पर वे भीतर सहसा प्रविष्ट नहीं होंगी भला। निकुञ्ज वातायनके समीप अवस्थित होकर वे हम दोनोंकी गतिविधियोंको देखेंगी। कुछ देर रस लेनेके अनन्तर ही उनमेंसे एक निकुञ्जका द्वार उन्मुक्त कर देगी और सब-की-सब अन्तर भागमें प्रविष्ट हो जायेंगी। आह्लादके कारण उनकी आँखें अपलक हो जायेंगी। उनका कण्ठ तो अवरुद्ध हो ही जायेगा, किन्तु निकुञ्जके बाहर पुष्पित-नीप-द्रुमावली भ्रमरोंके गुञ्जनसे गुञ्जित होकर यह सम्पूर्ण निकुञ्ज परिसर मुखरित हो उठेगा। वे सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ हम दोनोंका सर्वप्रथम मंगल नीराजन करेंगी, फिर शत-शत प्रेमिल मनुहारसे मुझे और तुम्हें बाहर चलनेके लिये विवश कर देंगी। हम दोनोंको ठीक उनका ही अनुसरण करना पड़ेगा भला। कलिन्दनन्दिनीकी लहरोंमें वे हम दोनोंको नहलायेंगी और न जाने क्या-क्या हम दोनोंसे करवायेंगी। उनकी रुचिके साँचेमें ही हम दोनोंको अपने प्राणोंको मिला देना है भला। अतएव अभीसे मैं तुम्हें सारी बात समझा दे रही हूँ। समझा दे रही हूँ इसलिये कि यदि तुम उन सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंके सामने मुझसे कुछ पूछोगे तो मुझे संकोच होगा। पहलेसे ही सारी व्यवस्थाकी बात स्पष्ट कर दे रही हूँ, क्योंकि जब तुम नट बनकर आनेके लिये और रंगस्थलपर कूद पड़नेके लिये प्रस्तुत हो जाओगे तो फिर विवश होकर मुझे तुम्हारे सम्पूर्ण खेलकी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी। पता नहीं कितने दिन बीत गये, युग-युगान्तर बीत गये होंगे, तबसे रंगस्थलका निर्देशन-कार्य मुझे ही करना पड़ता है। तुम बार-बार पूछते हो कि ऐसा क्यों, ऐसा क्यों। इन प्रश्नोंको सुनकर मुझे तुम्हारी सरलतापर हँसी आती है। हँसी आती है इसीलिये कि सब जानते रहनेपर भी तुम ऐसे निरर्थक प्रश्न करते रहते हो। तुम्हारा स्वभाव ही है मुझे छेड़ते रहनेका। तुम्हें पता नहीं है, ऐसी बात तो है नहीं। तुम तो जिद कर बैठते हो और यदि निर्धारित समयसे पहले ही मेरी नूपुर बज गयी एवं मेरी साँसका एक स्वर भी रंगस्थलके मंचपर ध्वनिके आभासका संकेत कर बैठा तो रंगमंच झंकृत हो उठेगा। सखियों- सहचरियों-मञ्जरियोंके कर्णपुटोंमें मेरी साँसकी वह स्वर-लहरी बैखरी बनकर मूर्त हो जायेगी और फिर कोलाहल हो उठेगा, इसीलिये तो मैं गूँगी और बहरी बनी रहती हूँ, न बोलती हूँ और न सुनती हूँ।

* * * * *

श्रीमद्भागवत पुराण का लेखन

बाबाके मनमें ऐसी चाह थी कि सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पुराणको हाथसे लिखवाया जाये और वह हस्तलिखित ग्रन्थ स्वयंमें इतना गरिमामय हो कि उसका दर्शन मात्र लाभकारी हो। लेखकके रूपमें श्रीमोतीलालजी पारीक जैसा सात्त्विकजीवन भक्तहृदय श्रेष्ठब्राह्मण और कहाँ मिलता? बाबाने इसकी चर्चा श्रीमोतीजीके सामने की। संकेत मिलते ही बाबाकी भावनाके अनुसार श्रीमोतीजीने श्रीमद्भागवत महापुराणका लिखना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमद्भागवत पुराणको कागजके जिन पत्रोंपर लिखा गया है, वे हस्तनिर्मित हैं तथा वे इतने मजबूत हैं कि जलवायुके प्रभावसे वे जल्दी नष्ट नहीं होंगे। कागज-निर्माताने ऐसा आश्वासन दिया है कि वे कई सौ वर्षतक टिके रहेंगे। लिखनेके लिये बाबाने स्याही भी विशेष रूपसे बनवायी थी। केलेका रस, आँवलेका रस, गंगाजल आदि-आदिके मिश्रणसे परम पवित्र स्याही बनवायी, जो भावकी दृष्टिसे तथा वस्तु-पदार्थकी दृष्टिसे पूर्ण सात्त्विक हो। स्याही भी ऐसी है कि उसके अक्षर न तो जलसे मिट पायेंगे और न कभी धूमिल होंगे, अपितु समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ उन अक्षरोंमें चमक अधिकाधिक बढ़ती चली जायेगी।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतको लिखनेमें श्रीमोतीजीको कुल तीन वर्ष लगे। हस्तलेखन कार्यके पूर्ण हो जानेके बाद उसके संशोधनकी व्यवस्था बाबाने की। श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें पं.श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री तथा पं.श्रीरामजीलालजी शर्माने, इन तीनों व्यक्तियोंने साथ-साथ बैठकर भागवत-ग्रन्थको आदिसे अंततक पढ़ा तथा लेखनकी जहाँ-जहाँ अशुद्धियाँ थीं, उन सबका संशोधन किया। इस प्रकार शुद्ध हो जानेके बाद बाबाने खुले पन्नोंवाले इस हस्तलिखित श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थकी पञ्चोपचार पद्धतिसे शत वर्षीय पूजा करवायी। तदुपरान्त बाबाने कहा – जो भी इस श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थका दर्शन करेगा, वन्दन करेगा, उस व्यक्तिमें व्रजभावका बीजारोपण हो जायेगा। अब यह बीज कब (अर्थात् किस जन्ममें किस रूपमें किस विधिसे) फूलेगा-फलेगा, यह बात दूसरी है, पर उसे कभी-न-कभी, 'व्रज-भाव-जीवन'की प्राप्ति अवश्य होगी।

यह श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थ काठकी जालीदार पेटीके अन्दर

सुरक्षित है। आजकल श्रीमद्भागवत पुराणकी पेटी श्रीराधा-कृष्ण-साधना-मन्दिरमें रखी हुई है।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा का शुभारम्भ

सं. २०१२ वि. आश्विन कृष्ण १२, बुधवार, २२-९-१९६५ के दिन बाबूजीका पावन जन्मदिवस था। ऐसा निश्चित किया गया कि बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके बाहर जन्मदिवस मनाया जाय। उस अवसरपर क्या-क्या होगा, यह सारा कार्यक्रम बाबाके निर्देशानुसार बना लिया गया। बाबूजी स्वभावतः बड़े संकोची हैं, अतः यह भी तय किया गया कि केवल श्रीनटवरजी ही बाबूजीकी पुष्प-चन्दन-मालासे अर्चना करके प्रणाम कर लेंगे और अन्य सभी लोग बैठे-बैठे यही भावना कर लेंगे कि श्रीनटवरजी द्वारा की गयी अर्चना मेरे द्वारा ही हो रही है।

जब बाबूजीको कार्यक्रममें आनेके लिये अनुरोध किया गया तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे अस्वीकार कर दिया। 'मेरा जन्मोत्सव मनाया जाय' यह उनको प्रिय था ही नहीं। गम्भीर अनिच्छा होनेके बाद भी येन-केन-प्रकारेण उनको जन्मोत्सवमें पधारनेके लिये मना लिया गया। निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे।

बाबूजीके आते ही उच्च जयकारके साथ भगवन्नाम संकीर्त्तन आरम्भ हुआ। फिर बाबाने ठाकुरजीसे नृत्य करवाया। उनके कलापूर्ण सुन्दर नृत्यसे वातावरणमें सरसता व्याप्त होने लगी। उस सरसताको घनीभूत बना दिया भावपूर्ण पदोंके गायनने। सघन-सघनतर होती हुई सरसताने बाबूजीपर बड़ा प्रभाव डाला और वे विशेष रूपसे अन्तर्मुख हो गये।

देहातीतावस्थामें निमग्न होते हुए बाबूजीको अधिक समयतक बैठाये रखना बाबाने उचित नहीं समझा, अतः उन्होंने संकेत द्वारा श्रीनटवरजीसे अर्चना करनेके लिये कहा। श्रीनटवरजीने बाबूजीके भालपर तिलक किया, फूलोंकी माला पहनायी तथा भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। सभी उपस्थित लोग बड़े भक्ति-भावसे यह अर्चना देख रहे थे।

उपस्थित लोगोंके बीच बैठे थे एक भक्त महात्मा भी। उनका भावुक

हृदय कुछ अधिक ही भावाप्लावित हो उठा और उनके उल्लासाधिक्यने रसकी बाढ़में बाधा डाल दी। कार्यक्रमकी पूर्व निर्धारित सुनिश्चित प्रक्रियाका यथावत् पालन न होनेसे उपस्थित भक्तोंको तो अच्छा लगा ही नहीं, बाबाका भी मन खिन्न हो गया।

अब बाबाके सामने प्रश्न यह था कि इस भावपूर्ण कार्यक्रममें आकस्मिक रूपसे उत्पन्न भावदोषके परिहारके लिये क्या किया जाय, जो मंगलकारी हो। भावदोषके परिमार्जनके लिये बाबाने निश्चित कर लिया कि मुझे सदाके लिये श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें निवास करना चाहिये।

इस निश्चयसे तुरन्त एक धर्म-संकटकी स्थितिका उद्‌भव हो गया। यदि बाबा श्रीगिरिराज तरहटीमें निवास करनेके लिये गोरखपुरसे गोवर्धन जाते हैं तो क्या बाबूजी भी सदाके लिये वहाँ जायेंगे? बाबूजीके कन्धोंपर जो विविध प्रकारके एवं अनेक स्तरके गुरुतर दायित्व हैं, उनको देखते हुए बाबूजीका गोवर्धन जा सकना सम्भव है ही नहीं। तो क्या बाबूजीके नित्य सांनिध्यमें अहर्निश निवास करनेवाले संकल्पको बाबा विसर्जित कर देंगे? यह भी सर्वथा असम्भव था। इस धर्म-संकटके निवारणके लिये यह हल निकाला गया कि गीतावाटिकाके श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें बाबा निवास करें।

गीतावाटिकामें विराजित श्रीगिरिराज भगवानकी स्थापनाका एक संक्षिप्त वृत्त है। सन् १९६३ में बाबाने श्रीषोडशगीतकी रासलीला करवायी थी, जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतमने इन सोलह पदोंका गायन किया था। इस सारे कार्यक्रमका एक विशेष प्रयोजन था। इस रासलीलामें चन्द्रिका और मोरमुकुटधारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके बाबाने षोडशगीतमें दिव्य भावोंकी 'प्राण-प्रतिष्ठा'का विधान भाव-विधिसे सम्पन्न किया था। यह लीला रेलवे कालोनीमें स्थित बाल्टी कारखानेके प्रांगणमें हुई थी। बाबा चाहते थे कि लीलाके समय यहाँ श्रीगिरिराज भगवानकी उपस्थिति रहे। उस कारखानेके एक कोनेमें कुछ रोड़े-पत्थर पड़े हुए थे। बाबाने उन्हीं रोड़े-पत्थरोंमें श्रीगिरिराज भगवानकी भावना कर ली और भावात्मक रूपसे उनकी अर्चना भी कर दी। लीलाके आयोजनके सम्पन्न हो जानेके कई माह बाद उन रोड़े-पत्थरोंको हटानेकी आवश्यकता हुई। यह प्रश्न बाबाके सामने आया। बाबाने कहा — उनको यों ही नहीं फेंक देना

चाहिये। इनकी अर्चना मैं श्रीगिरिराजजीके रूपमें कर चुका हूँ। यदि उन रोड़े-पत्थरोंको वहाँसे हटाना ही है तो उन रोड़े-पत्थरोंको ट्रकपर रखकर गीतावाटिका लाया जाय और मेरी कुटियाके सामने पधरा दिया जाय।

बाबाके निर्देशानुसार कार्य किया गया। बाबा इस बारेमें बड़े सावधान थे कि श्रीगिरिराज-भाव-भावित उन रोड़े-पत्थरोंको उचित स्थान और उचित सम्मान मिलना ही चाहिये।

गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीके विराजित होनेका यह संक्षिप्त वृत्त है। बाबाके सामने जो धर्म-संकट आ गया था, उसका निवारण करनेके लिये जो सुन्दर हल उभर करके सामने आया, वह यह था कि जो गिरिराजजी कुटियाके सामने विराज रहे हैं, इनकी तरहटीमें निवास करते हुए बाबा श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा लगाया करें। यह हल सर्व-प्रिय था। इस हलके अनुसार बाबाकी कुटियाके सामने स्थित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ इसी पावन जन्म-दिवसपर हुआ। व्रजभूमिके श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमामें आनेवाले स्थान श्रीराधाकुण्ड, श्रीआन्योर, श्रीपूँछरी, श्रीजतीपुरा, श्रीगोवर्धनग्रामकी स्थापना कहाँ की जाय, इसके बारेमें बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा — ठाकुर! तुम जो कहोगे, मैं वही मान लूँगा। केवल मैं ही नहीं, मेरे प्रियतम श्रीनीलसुन्दर भी ज्यों-के-त्यों उसे स्वीकार कर लेंगे।

थोड़ी देर बाद बाबाने इतना अवश्य कहा कि मेरी कुटियामें बरसाना ग्रामकी भावना करके अन्य स्थानोंकी भावात्मकता पूर्वक अवधारणा करना। उसी समय ठाकुर श्रीघनश्यामदासजीके सुझावानुसार राधाकुण्ड, गोवर्धन, आन्योर, जतीपुरा आदि स्थलोंका निर्धारण हुआ। श्रीगिरिराजजीकी एक परिक्रमा १३ मीलकी होनेसे यह भी तय हुआ कि एक सप्ताहमें बाबाकी दो परिक्रमा पूर्ण हो जाया करे।

बाबाकी कुटियाके समक्ष स्थित स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिधिको नापनेसे यह ज्ञात हुआ कि ४७ परिक्रमा देनेसे एक मीलकी दूरी तय होती है। इन सब बातोंका निर्धारण करके बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा आरम्भ की। क्षीण स्मृतिके अनुसार ऐसा स्मरण हो रहा है कि रातको ग्यारह बजकर सैंतालिस मिनटपर बाबाने परिक्रमा लगाना आरम्भ कर दिया था। बुधवारका दिन होनेसे इसका शुभारम्भ श्रीराधाकुण्डसे हुआ और कुल ४७ × ३ = १४१

फेरी लगायी गयी अर्थात् बाबा राधाकुण्डसे गोवर्धनतक तीन मील चलकर आये और गोवर्धन ग्राममें विश्राम किया।

अतः परिक्रमाका क्रम इस प्रकार निश्चित किया गया –

गुरुवार	गोवर्धनसे आन्योर	२ मील
शुक्रवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
शनिवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
रविवार	राधाकुण्डसे आन्योर	५ मील
सोमवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
मंगलवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
बुधवार	राधाकुण्डसे गोवर्धन	३ मील
		२६ मील

जब परिक्रमाके क्रमका शुभारम्भ हुआ, तब पद-गान तथा संकीर्तन नहीं होता था। यह क्रम तो बादमें परिक्रमाके साथ जुड़ गया। पद-गान तथा 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' के कीर्तनका क्रम जुड़नेके साथ-साथ श्रीगिरिराजजीके नित्य पूजन एवं भोग-रागका भी विस्तार होता गया।

* * *

सन् १९६५ में इन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाके शुभारम्भ होनेके बाद सन् १९७१ में बाबूजीकी चिता-वेदीका निर्माण भी इसी श्रीगिरिराज-परिसरमें हुआ। आजकल जहाँ प्रस्तर-निर्मित चौकी है, वहाँ पहले काठकी चौकी थी। इसे स्थायी रूप देनेके लिये उसके स्थानपर प्रस्तर चौकी बनवा दी गयी और यह बनवायी गयी सं. २०३४ वि. ज्येष्ठ कृष्ण ९, बुधवार, ११-५-१९७७ के दिन। जब प्रस्तर चौकीका निर्माण हुआ, तब रात्रिमें विशेष रूपसे हरिनाम संकीर्तन तथा प्रसाद-वितरण हुआ। अब तो प्रायः ही श्रीगिरिराज भगवानके समक्ष सविधि पूजन सहित अन्नकूटोत्सव मनाया जाता है। श्रीगिरिराज भगवानके चतुर्दिक् जो परिक्रमा पथ है तथा परिसर है, वह आज गीतावाटिकाका एक प्रमुख उपासना स्थल है।

परवर्ती कालमें बाबाका शरीर जब बहुत अस्वस्थ रहने लगा तब वे कुर्सीपर बैठकर श्रीगिरिराजजीकी पाँच परिक्रमा लगाया करते थे, परन्तु इसके पहले तो परिक्रमाके समय उनके चलनेकी स्फूर्ति देखते ही बनती थी। परिक्रमा आरम्भ करनेके पूर्व बाबा श्रीगिरिराजजीकी चौकीपर अपनी गुदड़ी रख दिया करते थे और फिर उस गुदड़ीपर अपना दाहिना हाथ टिकाकर बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए बैठे रहते थे। परिक्रमा स्थलीमें बैठे हुए भक्तजन बाबाको एकटक निहारते रहते थे। एक दिन एक व्यक्तिने अवसर देखकर प्रश्न कर लिया – बाबा! आप गुदड़ीपर हाथ रखकर नेत्र बन्द किये हुए क्या किया करते हैं?

समाधान प्रस्तुत करते हुए बाबाने बतलाया – मुझसे कई हजार व्यक्ति जुड़े हैं। इन व्यक्तियोंके मनका धरातल बड़ा निम्न है। वे मायामें इतने अधिक लिप्त हैं कि उनके पास भगवत्स्मरणके लिये समयका अभाव है। उनका अपने परमार्थकी ओर ध्यान नहीं। कुछ-एक लोगोंकी बात तो अलग है, पर अधिकांश लोग तो सांसारिकतामें सीमातीत रूपमें निमग्न हैं। मैं आँख मूँदे-मूँदे उन माया-निमग्न व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानकी प्रार्थना-अर्चना कर लिया करता हूँ। मुझको मेरे लिये कुछ नहीं चाहिये। मेरे जीवनसर्वस्व श्रीनीलसुन्दर नित्य मेरे साथ हैं। मेरे लिये क्या याद करना और क्या प्रार्थना करना, मैं तो उन व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानको याद करता हूँ।

बाबाके श्रीमुखसे भावपूर्ण समाधान सुनकर वे भाई बहुत विभोर हो उठे।

* * * * *

सरिता और सागर

अष्टछापके विख्यात भक्त-कवि श्रीनन्ददासजीके एक पदकी दो पंक्तियाँ हैं–

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परो प्रीतम अरु प्यारी, अपने-अपने जीकी।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण बैठे-बैठे परस्परमें प्रेम-सनी चर्चा कर रहे थे, तभी बेसरकी सुन्दरतापर बात चल पड़ी। पारस्परिक बातचीतके मध्य दोनों ही अपनी-अपनी बेसरको सुन्दरतर बतला रहे थे और बतलाते-बतलाते दोनों पक्षोंको अपनी-अपनी समझका आग्रह हो गया।

इसी प्रकारका आग्रह एक बार सन् १९६६ में बाबा और बाबूजीको अपनी-अपनी भावनाका हो गया था। प्रसंग गीता-भवन (स्वर्गाश्रम) का है, जो ऋषिकेशके उस पार गंगाजीके तटपर स्थित है। एक बहिन अपने कमरेमें बैठी हुई श्रीगंगाजीकी धाराको देख रही थी। उसका कमरा एकदम गंगाजीके तटपर ही था। हिमालयके शिखरसे उतरकर और घाटियोंको पीछे छोड़कर उसका जल-प्रवाह निरन्तर आगे मैदानी भागकी ओर तीव्र गतिसे बहता चला जा रहा है। पर्वतीय घाटियोंसे उतरकर आनेके कारण उस जल-प्रवाहमें बहुत वेग है। उस अविरल प्रवाहको देखकर वह बहिन मन-ही-मन कहने लगी– यह भी कैसी बात है कि यह सरिता सागरकी ओर सदा-सदा बहती ही रहती है। कभी एक क्षण ठहरनेका नाम भी नहीं लेती।

निरन्तर बहते रहनेकी भावनासे वह बहिन इतनी अभिभूत हुई कि उसने अपने मनके भावोंको बाबाके समक्ष व्यक्त किया। बाबाने इन भावोंकी बड़ी सराहना की और वे उस बहिनसे कहने लगे– यही तो राधा-भाव है। सिन्धु अत्यन्त खारा है, परंतु सिन्धु-पक्षकी इस न्यूनताकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हुए सरिता निरन्तर सागरकी ओर बहती ही रहती है। सरिता तो समर्पणकी साक्षात् प्रतीक है। प्रेमास्पदके गुण-अवगुणकी ओर तनिक भी दृष्टिपात न करते हुए प्रेमास्पदके प्रति प्रेमीका सर्व समर्पण, यही राधा-भाव है। प्रेमकी पाठशालाका यही प्रथम और यही अन्तिम पाठ है। अविरल प्रवाहके अन्तरालसे सरिताके समर्पणकी जो झलक तुमको

मिली है, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य है।

बाबाने उन बहिनकी भाव-धाराकी सराहना हृदयसे की थी। इस सराहनासे उत्साहित होकर एक-दो दिन बाद अनुकूल अवसर मिलनेपर उस बहिनने वही बात बाबूजीसे भी कह दी, जो उसने बाबासे कही थी। बाबूजीसे उसने यह भी बता दिया कि बाबा तो श्रीगंगाजीके निरन्तर बहते रहनेकी बड़ी महिमा बता रहे थे और वे यह भी कह रहे थे कि भक्तकी भाव-धारा बस, इसी प्रकार भगवानके प्रति होनी चाहिये।

उस बहिनके द्वारा ऐसा कह दिये जानेपर बाबूजीने बाबाके विचारोंका अनुमोदन तो किया ही, पर फिर बाबूजी सागरका पक्ष लेकर कहने लगे— उस सागरको भी तो देखो, जो युग-युगसे सरिताकी राह देख रहा है, निरन्तर प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि सरिताका पक्ष लिया बाबाने तो बाबूजीने लिया सागरका पक्ष। उसी दिन बाबूजीने तो गीताभवनके सत्संगमें प्रवचन देते हुए इसी बातकी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने सागरकी प्रशंसा की और कहने लगे— सागरके दर्शनकी आकुलतामें यदि सरिता निरन्तर बहती रहती है तो सरितासे मिलनकी आतुरता लिये सागर निरन्तर उमड़ता रहता है। सरिताकी आकुलता अनन्त है तो सागरकी आतुरता भी अनन्त है। तटोंका सहारा लेकर यदि सरिता सदा बढ़ती रहती है तो कभी-कभी तट-रेखाका अतिक्रमण करके आगे बढ़कर लहरोंका हाथ उठाये सागर सदा प्रतीक्षा करता रहता है। सरिताका कल-कल क्रन्दन यदि असीम है तो सागरका हा-हा गर्जन भी अनन्त है। सरिताकी प्रतीक्षामें रात-दिन लहरोंके रूपमें अपने हाथ उठाये-उठाये हाहाकार करनेवाले अनन्त सागरकी आतुरता किसी भी प्रकार न उपेक्षणीय है और न किसी प्रकार न्यून है। जगतके साधारण प्राणी कभी अनुमान कर ही नहीं सकते कि सच्चे प्रेमीके लिये भगवानके हृदयमें कैसी अनन्त आतुरता और कैसी अनवरत प्रतीक्षा बनी रहती है।

सरिता और सागरका, प्रेमी तथा प्रेमास्पदका, भक्त और भगवानका यह रसमय विवाद कई दिनतक चलता रहा। विवादके स्थानपर इसे संवाद कहना चाहिये। यह सरस संवाद था अभूतपूर्व और इसका आस्वादन भी था लोकोत्तर।

प्रेमी और प्रेमास्पदके परस्पराकर्षणका बड़ा सुन्दर चित्रण एक स्थानपर बाबूजीने किया है। महाभावमयी श्रीराधाके श्रीमुखके उद्‌गारोंको शब्द-बद्ध करते हुए बाबूजीने बताया–

होता जब वियोग, तब उठती तीव्र मिलन-आकांक्षा जाग।
पल-अमिलन होता असह्य तब, लगती हृदय दहकने आग।।
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनी विह्वल, विकल तुम्हारी ओर।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर।।

(जब वियोग होता है, तब अत्यन्त तीव्र मिलनाकांक्षाका उदय हो जाता है, फिर एक-एक पलका अमिलन असह्य हो उठता है और हृदयमें ज्वाला धधक उठती है। उस समय मैं रस-सरिता उन्मादिनी और विह्वल-विकल होकर तुम्हारी ओर चल पड़ती हूँ, उधर तुम रस-समुद्र कूल-किनारा त्यागकर मुझे अपनेमें मिला लेनेके लिये उमड़ चलते हो।)

'प्रेमी पक्ष'की भाव-धारापर उन दिनों एक कविताकी रचना हुई थी। यह रचना तो भावग्राही बाबाको अत्यन्त प्रिय लगी ही, 'प्रेमास्पद-पक्ष'का समर्थन करनेवाले बाबूजीका रसमय हृदय भी इस रचनापर बहुत अधिक रीझ गया था। वह कविता इस प्रकार है–

अनुपम धारा सुर-सरिताकी।
प्यार भरी अतुलित गति अविरल, सागर-लक्ष्य स्नेह-भरिताकी।।
कहा शिलाने– 'तुम मधु-सलिला और पुञ्ज वह खारेपनका।
सोचो तनिक, तुली हो क्यों तुम करने शेष मधुर जीवनका'?
कहा तटोंने– 'कहाँ चली तुम? क्या पाओगी उससे मिलकर?
क्यों खोती अस्तित्व स्वयंका, नाम-रूपका सिन्धु-चरणपर'?
शिला खण्डको, युगल तटोंको, मिला न कुछ सरिताका उत्तर।
सुना तनिक-सा कल-कल स्वरमें विकल हृदयका कल क्रन्दन वर।।
'कितनी दूर अभी बहना है? कितनी दूर सिन्धुका तट है?
दूर भला क्यों मिलन घड़ी है? मधुर मिलन क्यों नहीं निकट है'?
पथके पत्थर रोक न पाये सरिताकी उस धार प्रखरको।
विविध प्रश्न भी मोड़ न पाये, विरत न कर पाये पल भरको।।

भले क्षारमय उसे कहें सब, सिन्धु रूप बस, बसा नयनमें।
एक निरन्तर सिन्धु-मिलनकी छायी बस, उत्कण्ठा मनमें।।
सिन्धु-पुलिनका बस, अन्वेषण, एक साध्य बस, सिन्धु-देश है।
अविरल बहना, बहते जाना, बहना ही बस, कार्य शेष है।।

* * * * *

भगवान श्रीविष्णु से संभाषण

बाबाकी कुटियाके बाड़ेके भीतर अमरूदका एक पेड़ है। बाबा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी पूजा कर चुकनेके बाद निर्माल्य जहाँ रख दिया करते थे, उसी स्थानपर निर्माल्यमेंसे यह अमरूद-वृक्ष उग आया। बाबा अपनी कुटियाके बाहर, पर बाड़ेके भीतर खड़े थे कि उस अमरूद वृक्षके ऊपर आकाशमें भगवान श्रीविष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए प्रकट हो गये। बाबाने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। भगवान श्रीविष्णुका मुखमण्डल अत्यधिक प्रसन्न था। भगवान श्रीविष्णुने बाबासे कहा – तुम माता देवहूतिकी भूमिकाको स्वीकार कर लो।

माता देवहूतिके गर्भसे प्रकट हुए थे सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक आचार्य कपिल, जिनकी गणना चौबीस अवतारोंमें भी की जाती है। सांख्य-शास्त्रमें ज्ञान-तत्त्वका विशेष विवेचन और प्रतिपादन हुआ है। माता देवहूतिकी स्थितिको स्वीकार करनेका अर्थ होता है 'प्रेम' से 'ज्ञान' को श्रेष्ठतर और फिर सर्वोपरि मान लेना, किन्तु बाबा तो श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठित थे, जहाँ प्रेम-ही-प्रेम है। भगवान श्रीविष्णुके वचनोंसे प्रेरणा पाकर वे बाबा, जो अपने दिव्यस्वरूपमें प्रतिष्ठित थे, उन्होंने एक माँग उनके सामने रखी। माँगको सुनकर भगवान श्रीविष्णुने कहा – अभी काल (समय) अनुकूल नहीं है।

बाबाने कहा – पर आप तो सर्वसमर्थ हैं। कालके नियामक एवं नियन्त्रक भी तो आप ही हैं। अनुकूल कालका निर्माण आपके लिये कठिन कार्य नहीं है।

बाबाके ऐसा कहते ही भगवान श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये। उस पुरातन प्रसंगको सुनाकर बाबा बता रहे थे – भले भगवान श्रीविष्णुने

उस समय 'तथास्तु' नहीं कहा, पर उनके सामने मेरी अर्जी तो आ ही गयी है। रह-रह करके उनको मेरी अर्जीपर विचार करना पड़ता है ही।

बाबाने यह नहीं बताया कि उन्होंने भगवान श्रीविष्णुके सामने क्या माँग रखी थी।

* * * * *

'राधा-सुधा-निधि' की कथा

अजमेर-यात्रामें रसिक-संत श्रीसनम साहबके भाव-शिष्य राजवैद्य पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी बाबाके सम्पर्कमें आये। आप 'श्रीराधा-सुधा-निधि' नामक रस-ग्रन्थके अच्छे मर्मज्ञ थे। उदयपुरसे आप नित्य निवासके लिये श्रीवृन्दावन चले आये थे। श्रीसनम साहब भले मुसलमान थे, पर थे श्रीराधाजीके परम भक्त। हितकुलावतंस गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी महाप्रभुके सेव्य श्रीराधावल्लभलालजी ही श्रीसनम साहबके उपास्य थे।

श्रीसनम साहबके 'पधार' जानेके बादकी दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।

एक बार वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको एक पत्र एक संतने राधाकुण्डसे आकर दिया। पत्रके अन्तमें 'सनम सखी'के हस्ताक्षर थे और राधाकुण्डपर उस संतको श्रीसनम साहबने दिया था वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको दे देनेके लिये।

इसी प्रकार वृन्दावनके सेवाकुञ्जमें श्रीसनम साहबने सखी रूपमें श्रीवैद्यजीको दर्शन दिये थे और कहा था कि वे षष्ठी-उत्सवमें श्रीवैद्यजीके घर आयेंगे। श्रीसनम साहबकी उत्कट भक्तिका प्रभाव वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीपर पड़ा और उनकी जीवन-धारा श्रीप्रिया-प्रियतमकी रसमयी उपासनाकी दिशामें बह चली।

श्रीवैद्यजी और बाबाकी निकटता क्रमशः बढ़ती ही चली गयी। श्रीवैद्यजी सन् १९६५ ई.में गीतावाटिकामें बहुत दिनोंतक रहे तथा प्रतिदिन डेढ़-दो घंटा 'श्रीराधा-सुधा-निधि'की सरस कथा बाबाको सुनाया करते थे। कई मासतक श्रीराधा-रस-सुधाका पावन प्रवाह स्वच्छन्द रूपसे बहता रहा। इस सरस कथाके पावन प्रवाहने बाबाको बड़ा सुख प्रदान किया। २७० श्लोकोंवाला यह रसमय ग्रन्थ रसिक भक्तोंका कण्ठहार है।

स्वजन काव्य गोष्ठी

अलमस्त संतकी भीतरी मौज कब और क्या रूप ले लेगी, इसे कोई साधारण व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। अगला प्रसंग कबका है, इसे बतला सकना कठिन है, परन्तु अनुमानतः कहा जा सकता है कि सन् १९६६ के आस-पासका होना चाहिये। एक बार बाबा अपनी पुरानीवाली कुटियाके बाहर बैठे हुए थे और उनके पास बैठे हुए थे गीतावाटिकाके ही निज जन जैसे गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजी महाराज, परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल, श्रीभीमसेनजी चोपड़ा आदि-आदि। स्वजनोंका यह सामीप्य ही स्वजन काव्य गोष्ठीके रूपमें परिणत हो गया। कैसे परिणत हो गया? परिणत होना कोई कठिन बात थोड़े ही है। बाबाके मनकी मौजका यह परिणाम था। बाबाने उपस्थित सभी निज जनोंसे कहा– जो-जो यहाँ बैठे हैं, सभी एक-एक कविता या गीत या श्लोक या शायरी बोलें। जिसको जो याद हो, जैसा भी याद हो, वह उसे ही बोले।

बाबाकी यह मौज देखकर सभीके अधरोंपर हर्षकी कान्ति उभर आयी और इस स्वजन काव्य गोष्ठीका शुभारम्भ हुआ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके द्वारा। जिसने-जिसने जो जो सुनाया, वह नीचे दिया जा रहा है।

१– पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति।।

(ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश करके योगीजन यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण निष्क्रिय परमज्योतिको देखते हैं तो वे उसे भले ही देखें; परन्तु हमारे लिये तो श्रीयमुनाजीके तटपर जो कृष्णनामवाली वह अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फिरती है, वही चिरकालतक लोचनोंको चकाचौंधमें डालनेवाली हो।)

२– आदरणीया मैया (प्रयागवाली मैया, श्रीजजसाहबकी सहधर्मिणी)

कब दुखदाई होयगो मोंको बिरह अपार।
रोइ रोइ उठि धाइहौं कहि कहि नंदकुमार।।

३– श्रीरामप्रसादजी दीक्षित (सम्मान्य श्रीजज साहब)

He prayeth best who loveth best,
All things both great and small,
For the dear God who made us,
He made and loveth all.

(सबसे श्रेष्ठ प्रार्थना उसकी जिसका प्रेम पूत परमोत्तम।
सकल वस्तुके प्रति हो चाहे गुरु महान या तुच्छ लघुत्तम।।
क्यों कि स्नेहमय ईश्वरने ही है हम सबको रचा बनाया।
नहीं रचा ही केवल, निज वत्सलताका भी पात्र बनाया।।)

४– ठाकुर श्रीघनश्यामदासजी शर्मा

राधाकरावचितपल्लवल्लरीके,
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके।
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके,
राधाविहारविपिने रमतां मनो मे।।

(जहाँके पल्लव और मञ्जरी श्रीराधिकाजीके हाथोंसे चुने गये हैं, जहाँकी मनोहर भूमि श्रीराधिकाजीके चरणचिह्नोंसे सुशोभित हो रही है और जहाँके पक्षीगण श्रीराधिकाजीके यशोगानमें ही मस्त हैं, ऐसे श्रीराधिकाजीके क्रीडावन वृन्दावनमें मेरा मन विहरण करे।)

५– श्रीहरिवल्लभजी शर्मा

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की।।
न्याय परौ ललिता के आगे कौन सरस को फीकी।
नंददास प्रभु बिलगि जिन मानो कछु इक सरस लली की।।

६– स्टेशन मास्टर श्रीशंकरलालजी

इस कदर मश्के तसव्वुर हो मेरी आँखों में।
कुछ नजर आये न यार की सूरत के सिवा।।

* * * * *

आपकी याद का चुभ जाये जो दिल में काँटा।
हम कसम खाते हैं फूलू का नजारा न करें।।
आपके दर्द दी दौलत अगर हमको हो नसीब।
हम कभी दुनिया की राहत को पुकारा न करें।।

* * * * *

मोहब्बत में इक ऐसा वक्त भी आता हैं इन्साँ पर।
कि तारों की चमक से चोट लगती है रगे जाँ पर।।

* * * * *

तेरी मखमूर आँखों ने मुझे मस्ती अदा की है।
नही तो गैर-मुमकिन था मेरा बेहोश हो जाना।।

* * * * *

इस कदर तेरा तसव्वुर मुझे बढ़ जाता है।
आइना देखता हूँ मुँह तेरा नजर आता है।।

* * * * *

आँखें हों और तुम न हो आँखों के सामने।
मंजूर वह नजर व नजारा न मुझको।।

७– बहिन श्रीसावित्रीबाई फोगला

काहू के बल भजन को काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के सोवें पाँव पसार।।

८– बहिन कमलजी

सर बसजूद है मगर अज्म में पुख्तगी नहीं।
कायले बन्दगी तो हूँ काबिले बन्दगी नहीं।।

कौन सुनेगा तेरे सिवा पेशे नजर कभी तो आ।
सिज्दा करूँ किसे बता जब तू ही सामने नहीं।।
माना कि मैं गरीब हूँ माना कि मैं हकीर हूँ।
मुझसे न ऐसे रूठिये जैसे मेरा कोई नहीं।।

(मेरा मस्तक तो झुका हुआ है, परन्तु मेरे संकल्पमें दृढ़ता नहीं है। यह तो मानती हूँ कि उपासना करनी चाहिये, परन्तु मुझमें उपासना करनेकी योग्यता नहीं है। तेरे सिवा मेरी पुकारको कौन सुनेगा? कभी तो मेरी आँखोंके सामने आ। जब तू ही सामने नहीं है तो बता, मैं किसे प्रणाम करूँ? यह तो मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं गरीब हूँ और अत्यन्त तुच्छ हूँ, परन्तु मुझपरसे तुम अपनी नजर इस भाँति न हटा लो, मानो मेरा कोई नहीं हो।)

९— पानकी नानी

सीताराम सीताराम बोल सुवा।
सुवा ने खुवा द्यौ माल पुवा।।
राधेश्याम राधेश्याम बोल चिड़ी।
चिड़ी ने खुवा द्यौ खीर पुड़ी।।

१०— श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा

अय मेरे जख्मे जिगर नासूर बनना है तो बन।
क्या करूँ, इस जख्म पर मरहम लगाना है मना।।
मकतबे इश्क का देखा अजब दस्तूर।
उसे छुट्टी न मिली जिसे सबक याद हुआ।।

११— श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल

आमि त तोमारे चाहिनि
तुमि आमागोरे चेयेछो।
आमि ना डाकिते हृदय माँझारे
निजे एसे देखा दियेछो।।
चिर आदरेर विनिमये लाड़िली
चिर अवहेला पेयेछो।

(मैंने तो जीवनमें तुम्हें चाहा नहीं, तुमने ही मुझ अभागेको चाहा

है। मैंने तो कभी तुम्हें पुकारा नहीं, पर फिर भी स्वयं तुमने ही मेरे हृदय-देशमें आकर दर्शन दिया है। हे लाड़िली! तुमने मुझे चिर आदर दिया, पर मेरे द्वारा उस आदरके बदलेमें चिर अवहेलना ही हुई है।)

१२– श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव

हृदयमें पीर नयनमें नीर।
यही मम जीवनकी तस्वीर।।

* * * * *

हृदय बेपीर नयनमें तीर।
यही जीवनधनकी तस्वीर।।

१३– श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

असु अमी सुखाने पत्थर पायातील।
मन्दिर उभविणे हेच आमुचे शील।।
वृक्षाचा शाखा उँचनि भाँतरि जावो।
विश्रान्ति सुखाने विहग वृन्द ते घेवो।।
हे दैवच आमुचे ध्येय मन्दिरातील।
असु अमी सुखाने पत्थर पायातील।।

(मेरा सुख इसीमें है कि मैं मन्दिरकी चौखटका पत्थर बन सकूँ। मन्दिरका निर्माण हो जाना चाहिये, यही मेरा शील है। मुझे उसका कलश बननेकी अकांक्षा नहीं है। मन्दिरके प्रांगणके वृक्षकी शाखायें खूब फूलें-फलें और ऊँची उठती जायें, जिससे उसपर विहग-वृन्द सुखसे विश्राम कर सकें। हे देव! मेरा सुख तो उस ध्येय मन्दिरकी नींवका पत्थर बन जानेमें ही है।)

* * * * *

गोरक्षा आन्दोलन में गोपनीय सहयोग

धर्मप्राण भारतमें गोवंशकी हत्या देशके लिये एक कलंक है। गोवध-बन्दीके लिये समय-समयपर अपने देशमें अनेक प्रयत्न हुए, किन्तु इन सभी प्रयत्नोंमें 'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' द्वारा संचालित सन् १९६६ के नवम्बर-दिसम्बर वाले आन्दोलनका विशेष स्थान है। इस आन्दोलनसे सारे देशमें गोरक्षाके लिये अभूतपूर्व लहर फैल गयी थी, किन्तु कॉंग्रेसी सरकारकी मुस्लिम संतुष्टीकरण वाली नीतिके कारण आन्दोलन असफल हो गया। ७ नवम्बरके दिन दिल्लीमें अति विराट जुलूसका निकलना, परमपूज्य श्रीपुरीशंकराचार्यजी और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीका अनशन व्रतपर बैठना, सत्याग्रहियों द्वारा जेलोंका भर दिया जाना, ये सब उस आन्दोलनकी महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक बातें हैं।

'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' का संचालन करनेवाली 'सर्वोच्च समिति' के सात सदस्योंमेंसे एक सदस्य बाबूजी भी थे। बाबूजीके द्वारा ही इस आन्दोलनका बीजारोपण स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में हुआ था। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके बीच जो पारस्परिक गतिरोध था, उस गतिरोधको मिटा करके उनको एक मंचपर ले आनेका और आन्दोलनके संकल्प-पत्रपर दोनों विभूतियोंका प्रसन्न मनसे हस्ताक्षर करवा लेनेका श्रेय बाबूजीको ही है और हस्ताक्षरके रूपमें इस आन्दोलनकी नींव स्वर्गाश्रममें पड़ी। फिर आन्दोलनके काममें खूब तेजी आयी। कार्य-विस्तारके समय अथवा नीति-निर्धारणके समय आन्दोलनके शीर्ष नेताओंके मध्य जब-जब कोई गतिरोध उत्पन्न हुआ, तब-तब वह विषमता, कभी आंशिक रूपमें और कभी पूर्ण रूपमें दूर हो सकी बाबूजीके प्रयाससे। उन्होंने अपनी 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके माध्यमसे विशाल जनमत तैयार किया। पत्रिकाके पन्ने गोरक्षाकी बातोंसे भरे रहते थे। अपनी पत्रिका तो अपनी थी, अतः उसको तो इस कार्यमें झोंक ही दिया, इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओंको वक्तव्य भेजकर, नेताओं-महापुरुषोंके पास पत्र लिखकर, यत्र-तत्र सार्वजनिक सभाओंमें भाषण देकर, जेलमें सत्याग्रहियोंसे तथा आश्रमोंमें साधु-संतोंसे मिलकर, अपने व्यक्तियोंको

स्थान-स्थानपर कार्य करनेके लिये भेजकर, इस प्रकार विविध रीतिसे उन्होंने आन्दोलनको सफल बनानेका अथक प्रयास किया। किसी भी आन्दोलनको चलानेके लिये धनकी पदे-पदे जरूरत होती है। बाबूजी कोषाध्यक्ष थे और आवश्यक धन-संग्रह भी उनके द्वारा हुआ।

बाबूजी द्वारा होनेवाला यह सारा कार्य ऐसा था, जिसे समाज अपनी आँखोंसे देख रहा था तथा देख-देख करके बाबूजीको वन्दन कर रहा था, पर कुछ ऐसे भी सुगुप्त प्रयास थे, जिसकी जानकारी समाजको मिल ही नहीं पायी। बाबूजीके साथ बाबा नित्य रहते ही थे। उनका भी हृदय गोहत्यासे व्यथित था। वे भी हृदयसे चाहते थे कि गोहत्या बन्द होनी ही चाहिये, इसमें बाबाका प्रयास कम नहीं रहा, भले वह लोगोंके सामने प्रकाकशमें नहीं आ सका।

जब ७ नवम्बर १९६६ को विशाल जुलूस निकलनेवाला था, तब बाबूजी और बाबा दिल्लीमें ही थे। गोरक्षार्थ निकलनेवाले उस जुलूसको और उस विराट आन्दोलनको कुचल देनेके लिये इन्दिरा सरकारने कमर कस रखी थी। दिल्लीमें प्रधानमंत्री श्रीइन्दिराजीका जो निवास-स्थान था, वहाँ कब-कब और क्या-क्या चर्चा होती है, इसकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने अपना ढंग बैठा रखा था। अपने विद्यार्थी जीवनमें बाबाने देशको स्वतन्त्र करानेवाली क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें खूब भाग लिया था। उस क्रान्तिकारी जीवनका अनुभव होनेके कारण उनको भीतरी बातोंको पता लगा लेनेवाले 'तरीकों'की जानकारी थी। वह पुरानी जानकारी अब गोरक्षाके निमित्त काम आयी। प्रधानमन्त्रीके निवासस्थान तीन-मूर्ति भवनकी अनेक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके वे बाबूजीको बतला दिया करते थे। तीन-मूर्ति-भवनकी तरह कुछ और भी महत्त्वपूर्ण 'चर्चा केन्द्र' थे। उन-उन स्थानोंकी अनेक आवश्यक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके आप बाबूजीको पूर्ण सूचना दे दिया करते थे।

धन-संग्रहमें भी बाबाका कम योगदान नहीं रहा। जितने भी धनपति बाबासे मिलनेके लिये आते थे, आप उनको प्रेरणा देते थे कि गोरक्षाके लिये जितना रुपया दे सकते हैं, आप लोग अवश्य दें और आप श्रीपोद्दार महाराजकी थैली भर दें। गो-ब्राह्मण-मन्दिर-तीर्थ आदिकी सेवामें जो धन लग जाता है, वह दान अमोघ होता है।

बाबूजीको उन्होंने समय-समयपर जो सही परामर्श तथा उचित

सुझाव दिया, यह कार्य तो सदा परम गोपनीय रहा।

बाबाको तो अपने जीवनकी परवाह रहती ही नहीं थी। समयपर वे अपने निज जनोंके जीवनको भी दाँवपर लगा दिया करते थे। इन्दिरा सरकारकी कूटनीतिके कारण जो धक्कामुक्की, पथराव, आगजनी, अश्रु-गैस, फायरिंग आदि हुई, उसके फलस्वरूप ७ नवम्बर वाला विराट जुलूस विफल हो गया। दिल्लीमें पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरातसे हजारों गोभक्त सैकड़ों बसोंके द्वारा आये थे। ये बसें लाल किला मैदान और सुभाष पार्कमें थीं। जुलूसके विफल होते ही पुलिस अपने डंडेके बलपर उन बसोंको अपने-अपने स्थानपर वापस भेजने लगी। लाल किलेके सामनेवाले मैदानमें सेना मार्च कर रही थी।

८ नवम्बरको दिल्लीके वातावरणमें बड़ी सनसनी थी। बाबाको इसका अखबारी समाचार नहीं, सही आँखों-देखा समाचार चाहिये था। उन्होंने तुरन्त चोपड़ाजीसे कहा – आप लाल किला और सुभाष पार्क जाइये और वहाँका सारा समाचार लाइये। डरियेगा नहीं। देश-धर्मके लिये जानको हथेलीपर रखना चाहिये। हाँ, एक बात और। आपको अकेले नहीं भेजूँगा। आपके साथ बंकाजी भी जायेंगे।

बाबाकी प्रेरणासे चोपड़ाजी गये और उनके साथ मैं था। वहाँ हम दोनों गये और वहाँका सारा समाचार लाकर बाबाको दिया।

मैं यहाँ कहना यह चाहता हूँ कि गोरक्षामें बाबूजी तो पूर्ण सक्रिय थे ही, परन्तु बाबूजीके साथ बाबा भी थे, भले वे बाबा ऊपरसे देखनेमें पूर्ण निष्क्रिय दिखलायी देते थे। निष्क्रिय दिखलायी देनेवाले बाबा गोरक्षाके लिये कितने सक्रिय थे, यह रहस्य केवल वे जानते हैं, जो उन दिनों उनके पास थे।

* * * * *

एक छिपे भक्त

एक बार राजस्थानकी बात चल रही थी, अतः बाबाने राजस्थानके एक मारवाड़ी गुप्त भक्तकी गाथा सुनानी आरम्भ की। यह घटना बाबूजीके महाप्रस्थानसे कुछ साल पहलेकी है। एक मारवाड़ी सज्जन बाबूजीके पास आये। सिरपर खूब बड़ी पगड़ी थी। वे ऐसा

बोलते थे, मानो खड़ी बोली बोलना जानते ही नहीं हों। एकदम मारवाड़ी भाषामें बात करते। वे गीतावाटिका आकर बाबूजीके कमरेमें गये तथा कहा – मैं तो बाबासे मिलना चाहता हूँ।

बाबूजीकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। उन्होंने उस व्यक्तिमें कुछ देखा, अतः किसीके साथ उन बहुत प्रौढ़ मारवाड़ी सज्जनको बाबाके पास भेज दिया। बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेसे बाहर निकलकर उनके पास बैठ गये। वे अपनी बात सुनाने लगे। उन मारवाड़ी सज्जनने बताया – मैं एक बार बीमार पड़ा। घरवालोंने चिकित्सा की, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती चली गयी। एक दिन तो मरणासन्न स्थिति हो गयी। मुझे कुछ क्षणोंका मेहमान मानकर घरवालोंने खाटपरसे उतारकर जमीनपर सुला दिया। जमीनपर सुलानेके बाद मुझे तो होश रहा नहीं, पर मैंने देखा कि एक बड़ा सुन्दर-सा छोरा मेरे पास बैठा है। होठोंपर अँगुली लगा रखी है और मेरी ओर एकटक देख रहा है। उस छोरेके शरीरका रंग नीला-नीला है। उसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं है। उसकी बड़ी ही प्यारी-प्यारी, भोली-भोली सूरत है। मुझे शरीरका तनिक भी भान नहीं था। मैं उसे देख रहा था और वह छोटा-सा छोरा मुझे देख रहा था। मुझे तो पता नहीं, पर घरवालोंने कहा कि उस बेहोशीकी हालतमें मैं दस दिनतक पड़ा रहा। जब दस दिनतक मेरे प्राण बचे रहे तो मेरे घरवालोंने मुझे पुनः खाटपर लिटा दिया। दस दिनके बाद उस छोरेका दिखलायी देना बन्द हो गया। उसका दिखना तो बन्द हो गया, पर उसकी मीठी-मीठी आवाज सुनायी देती रही। इस आवाजका सुनना कभी बन्द नहीं हुआ। वह आवाज इतनी मीठी है कि क्या कहूँ? उस मिठासका बखान सम्भव नहीं। उसके सुननेसे मन भरता ही नहीं है, पर एक आश्चर्य यह कि उसकी मीठी आवाज केवल मुझको ही सुनायी देती थी। पासके किसी भी व्यक्तिको यह आवाज सुनायी नहीं देती। अब तो मैं उससे रोज बात करने लगा। धीरे-धीरे मेरी तबियत ठीक होने लगी और मैं चलने फिरने लगा। समय बीतनेपर मैं एकदम ठीक हो गया, पर उससे बात करनेकी चाह हमेशा बनी रहती। उससे बात करनेका सिलसिला सदा बना रहा। वह जो कहता, उसको मैं कभी टालता नहीं था। एक उदाहरण लें। घरवालोंने मुझे पीनेके लिये दूध दिया। दूध पीनेके

लिये मैंने ज्यों ही गिलास हाथमें लिया, त्यों ही यदि उसने कह दिया कि दूध मत पीओ तो मैं दूध नहीं पीता था। मैं दूधका गिलास वहीं रख देता था। कभी आधा पीनेके बाद मना करता तो दूध पीना बन्द कर देता। वह जैसे कहता, वही मैं करता। यही बात भोजनके बारेमें अथवा कहीं जानेके बारेमें थी। मैं चौराहेपर यदि दाहिनी ओर मुड़कर जाना चाहता हूँ, पर यदि उसने कह दिया कि सामनेकी ओर चले चलो तो फिर मैं सामने ही जाता था। धीरे-धीरे उससे संकोच हट गया। मैं उससे व्यापार सम्बन्धी बातें भी पूछने लगा कि क्या मैं अमुक सौदा कर लूँ। वह जब हाँ कहता, तभी मैं वह सौदा करता। उस सौदेके करनेसे इतना लाभ हो जाता कि घर-गृहस्थीका खर्च निकल जाता। यह सब तो ठीक है, पर एक बातका बड़ा दुख है कि वह दिखलायी नहीं देता। बस, यह चाह होती है, बहुत अधिक चाह होती है कि वह दिखलायी दे। मुझे तो आपसे यही पूछना है कि वह छोरा मुझे कब दिखलायी देगा, कैसे दिखलायी देगा।

वे मारवाड़ी सज्जन बाबाको बड़े भाव भरे ढंगसे यह सारी गाथा सुना रहे थे और उनके स्वरमें बड़ी उत्सुकता थी कि उस छोरेका दर्शन होना चाहिये। बाबाने उनसे कहा – मृत्युसे पहले आपको दर्शन हो जायेंगे।

यह उत्तर सुनकर वे बड़े उद्विग्न हो उठे और ठेठ मारवाड़ी भाषामें क्षुब्ध हृदयसे कहने लगे – मृत्युके समय दर्शन हुआ तो क्या हुआ? क्या वह दर्शन भी कोई दर्शन है? दर्शनका मजा तो जल्दी-से-जल्दी होनेमें है। जिस तरह उस छोरेसे बात करनेका मजा मिलता रहता है, वैसे ही उसको देखनेका मजा भी मिलता रहे। उससे बात करनेका तथा देखनेका मजा हमेशा मिलता रहे। बस, आप तो यह बतायें कि जल्दी-से-जल्दी उसका दर्शन कब होगा।

वे निपट मारवाड़ी सज्जन बाबासे चिपट ही गये। बाबाने बतलाया – यदि वे श्रीपोद्दारमहाराजके भेजे हुए मेरे पास नहीं आये होते तो मैं कभीका बहला-फुसलाकर उन्हें विदा कर दिया होता। मैं जितना-ही-जितना उनसे कतराता, वे उतना-ही-उतना अधिक मुझपर हावी होते।

बाबासे उन्होंने कहा – मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप बहुत ऊँचे संत है। बड़ी आशासे मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरी बात बना दें कि मुझे उस छोरेके दर्शन होने लग जाये।

उनसे पल्ला छुड़ानेके लिये बाबाने कहा – अच्छा मृत्युसे पर्याप्त समय पहले आपको उस छोरेका दर्शन हो जायेगा।

तब वे मारवाड़ी सज्जन बोले – मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मैं हिन्दी नहीं जानता। 'पर्याप्त' माने क्या होता है? आप पर्याप्तका भाव समझाइये।

तब बाबाने कहा – मृत्युके बहुत पहले।

यह सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनने कहा – अच्छा, निरा पहले, बहुत अच्छा।

इतनी बात करके वे मारवाड़ी सज्जन उठकर चले गये और बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेकी ओर चले। कुटियाके एकदम समीप एक बिल्व वृक्ष है। जब वे मारवाड़ी सज्जन बिल्व वृक्षके पास पहुँचे तो वे उस छोरेसे पूछते हैं – अरे, तू यह बात बता कि यह साधु जो बात कह रहा है, वह सही कह रहा है क्या?

उस छोरेने रोष भरी वाणीमें भिड़कते हुए कहा – पहले तो तू वहाँ गया ही क्यों और यदि गया तो फिर उस साधुके कहनेपर संदेह क्यों किया?

उस छोरेकी बात सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनकी भावनाओंको बड़ा धक्का लगा कि मुझसे एक बड़ा अपराध हो गया है। अपराध-बोधकी भावनाके उदित होते ही वे बाबाकी कुटियाके बाड़ेकी ओर बढ़े। बाबा अपने बाड़ेका द्वार बन्द कर चुके थे। वे द्वारपर आकर बाड़ेका फाटक थपथपाने लगे तथा कहने लगे – ओ बाबा! ओ बाबा! बस, एक बार और खोल दें। बस, एक मिनटके लिये खोल दें। ओ बाबा! बस, एक बार। बस, एक बार।

बाबा लौटकर वापस आये तथा द्वार खोलकर खड़े हो गये। तब उन मारवाड़ी सज्जनने वह सब बात बाबाको बतायी, जो उस नीले छोरेसे बिल्व वृक्षके पास हुई थी। यह सब कहकर और हाथ जोड़कर वे बाबासे क्षमा याचना करने लगे – मेरी गलती माफ कर दें। मेरा संदेह मिट गया। आपकी बात जरूर सच होगी।

इसके बाद वे मारवाड़ी सज्जन चले गये। इस भेंटके लगभग एक-डेढ़ साल बाद वे फिर आये, बड़े प्यारसे बड़ी श्रद्धा पूर्वक मिले तथा कहने लगे – बाबा, अब तो उस छोरेके दर्शन होने लग गये हैं! इतना ही नहीं, उसकी लीलाओंके भी दर्शन होते हैं। मै तो निहाल हो गया।

ये सब बातें वे अपनी सरल मारवाड़ी भाषामें बड़ी भोली रीतिसे कह रहे थे। उनके द्वारा ऐसा सब बता दिये जानेके बाद बाबाने उनसे पूछा – एक बात बताइये। क्या आपकी यह घटना मैं किसीके सामने कह सकता हूँ?

मेरे ऐसा कहते ही वे बिगड़ उठे – बस, आप साधुओंमें यही खोट है कि किसीकी बातको पचा नहीं सकते, छिपा नहीं सकते। आपको पूज्य मानकर यह सब बताया तो क्या इसलिये बताया कि आप लोगोंको बताते फिरें?

यह सुनकर बाबाने कहा – मैं यह वचन तो नहीं देता कि मैं नहीं बताऊँगा, पर यदि बताऊँगा तो आपकी हानि नहीं होगी। कोई यह नहीं जान पायेगा कि यह घटना किसके जीवनकी है।

यह प्रसंग सुनाते-सुनाते हम लोगोंको बाबाने बतलाया – फिर वे मेरे पाससे चले गये। अब पता नहीं कि उनका शरीर है या नहीं। उन मारवाड़ी सज्जनके हृदयमें अप्रकट रहनेकी जो भावना थी, वह स्वाभाविक थी। जो वस्तुतः श्रीकृष्णानुरागमें छका रहता है, वह भक्त तो अपनी भक्ति-भावनाको सुगुप्त ही रखना चाहेगा।

* * * * *

गैरिक वस्त्र की मर्यादा

१९५६ में बाबाने काष्ठ मौन व्रत ले लिया। काष्ठ मौनके बाद बाबाके नियमोंमें काफी कठोरता आ गयी। सही-सही समय बतला सकना कठिन है, परन्तु सम्भवतः सन् १९६६ में पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र अपने चतुर्थाश्रमी सहोदर भाई अर्थात् बाबासे मिलनेके लिये गोरखपुर आये। जहाँतक पारिवारिक जनोंसे मिलनेकी बात है, बाबाके नियमानुवर्तितामें बड़ी कठोरता थी। उस कठोरताके कारण यह सम्भव ही नहीं लग रहा था कि बाबा अपने परिवारके किसी भी व्यक्तिसे, जिससे

रक्त-सम्बन्ध हो, उससे मिल लेना चाहेंगे। मिल लेनेकी बात तो दूर रही, उन कौटुम्बिक जनोंकी समीप-स्थिति भी बाबाको अभीष्ट नहीं थी। इसी कारण बाबूजीने पण्डित श्रीतारादत्तजीको गीतावाटिकाके बाहर श्रीजगदीशजी शर्मांके घरपर ही ठहराया। बाबूजी नहीं चाहते थे कि बाबाके नियम-निर्वाहमें किसी प्रकारकी कोई बाधा या विघ्न उपस्थित हो।

बाबूजीको ज्ञात था कि बाबासे मिलनेके लिये ही पण्डित श्रीतारादत्तजी आये हैं और उन्होंने बाबाको उनके आनेकी सूचना देकर यह बतलाया कि वे आपसे मिलना चाहते हैं। इस समाचारको सुनकर बाबाने बाबूजीके माध्यमसे काव्यात्मक शैलीमें अभिव्यक्त एक संदेश पण्डितजीको दिया, जिसमें स्पष्ट संकेत है कि अब हम दोनोंका मिलन यहाँकी काँटों-भरी अटवीमें नहीं होगा। अब तो मिलन होगा उस व्रजपुरमें, जहाँके पशु-पक्षी, पत्र-पुष्प पल-पल हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जहाँ दिव्य रास-विलासका रस-सिन्धु नित्य उच्छलित रहता है। बाबाद्वारा प्रणीत वह काव्यात्मक संदेश नीचे दिया जा रहा है –

है पथ तुलसी वन जोह रहा हम दोनोंका पल पल प्रियतम!
नीली सरिता हो व्याकुल है कर रही शब्द कल कल प्रियतम!
हैं अपलक बाट निहार रहीं वे वल्लरियाँ फूली, प्रियतम!
सुस्पष्ट दे रही है इंगित सारी शुकपर झूली प्रियतम!

नश्वर तनकी पगडंडीपर ठहरो मत तुम प्यारी प्रियतम!
चलती जाओ चलते जाओ रहकर गुमसुम प्यारी प्रियतम!
काँटोंकी अटवीमें मिलकर देरी न करो प्यारी प्रियतम!
चेरीपर चरण-सरोरुह की अविलम्ब ढरो प्यारी प्रियतम!

अतएव ध्यान रखना ही है हमको इस विनतीका प्रियतम!
एवं अपने पद चालनके तालोंकी गिनती का प्रियतम!
पहली दूसरी नृत्य थेई आयी सम पर ज्यों ही प्रियतम!
अग्रज को देगा डुबा सिन्धु रस महाभाव त्यों ही प्रियतम!

जो कहीं अनुज अधिकारी रुचि या महीपाल मतिका प्रियतम!
आदर कर परिचय देता जग सम्बद्ध नेह गतिका प्रियतम!
वे पहुँच नहीं पाते अबतक सच्चिन्मय मंजिलपर प्रियतम!
मायाका ताप नहीं मिटता मिलता न कृष्ण तरुवर प्रियतम!

अग्रजके दृश्य अनुज तनसे जिनका नाता था, है प्रियतम!
वे पहुँचेंगे ही नित्य जहाँ कान्हा गाता था, है प्रियतम!
है अतः नियम अमिलन जिससे सबकी अन्तिम घाटी प्रियतम!
हो सुखद अतीव लगे मिलने माटीमें जब माटी प्रियतम!

इसीलिये विश्वास, किये रहो अविचल अहो।
व्रजपुर नित्य निवास, कुंजस्थलपर दृग रहे।।
उपवनके उस पार, हम सब ही मिल जायँगे।
माया सरित कगार, पर मिलनेमें हानि है।।

यह संदेश पण्डित श्रीतारादत्तजीके जीवनका कण्ठहार बन गया। वे सदा इसे गाया करते थे। उनके श्रीमुखसे हमलोगोंको भी यह संदेश सुननेका सौभाग्य मिला है। वे बहुत ही सुललित और सुस्वर ढंगसे सुनाया करते थे।

यह संदेश बाबाकी ओरसे दिया गया। बाबाकी दृष्टिमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण थे। संदेशमें अभिव्यक्त यह तथ्य ही एक प्रमाण है कि उनके व्यक्तित्वमें मात्र महाभावकी सत्ताका अस्तित्व था। उनकी ओरसे संदेश भले किसीको भी दिया जाय, किन्तु उसका अर्थ यही है कि महाभाव स्वरूपा श्रीराधा अपने प्रियतम जीवनेश्वर श्रीकृष्णको संदेश दे रही है।

पद्यात्मक संदेशका संक्षेपमें भावार्थ इस प्रकार है —

नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको ऐसा अनुभव होता है कि प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें मिलनाभिलाषा है। उसका उत्तर संकेतमें देती हुई कृष्णप्रिया श्रीराधा कह रही है — वृन्दावनमें मिलूँगी। वृन्दावन हम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहा है। वृन्दावनमें यमुनाके किनारे मैं उस स्थलपर मिलूँगी, जहाँ लहरें कल-कल शब्द करती हुई हमदोनोंको बुला रही हैं। वह देखो, पुष्पित वल्लरियाँ अपलक होकर हमलोगोंकी बाट देख रही हैं। इतना ही नहीं, उस कदम्बके वृक्षपर बैठी हुई सारिका अपनी ग्रीवा शुककी ओर झुकाये हुए है और ग्रीवा झुकाये-झुकाये सारिका मुझको और तुमको एक संकेत कर रही है। सुन लो कि वह क्या कह रही है। उसके संकेतका तात्पर्य यही है कि हे प्यारी राधे! हे प्रियतम श्रीकृष्ण! इस नश्वर तनरूपी पगडंडीपर बिल्कुल मत ठहरो। पगडंडीके दोनों ओर खड़े हुए व्यक्तियोंकी

किसी भी बातपर ध्यान मत दो। बस, चुप रहकर गुम-सुम रहकर चलती जाओ, चलते जाओ। कँाटोंके वनमें मिलकर व्यर्थ विलम्ब मत करो। यह इसलिये कि उस कँाटों भरे वनमें ठहरना तो है ही नहीं। हे प्यारी राधे! मैं सारिका तुम्हारे चरण-सरोरुहकी चेरी हूँ। तुम मुझपर कृपा करो और अविलम्ब ढर जाओ।

अब तुम तो परम खिलाड़ी हो, इसीलिये मैं तुम्हें सावधान कर दे रही हूँ कि हम दोनोंको सारिकाकी इस विनतीपर ध्यान रखना ही पड़ेगा और साथ-ही-साथ अपने पद-विन्यासकी तालोंकी गिनतीपर भी ध्यान रखना भला। मैंने तो आजतक कभी नृत्यमें भूल की नहीं, किन्तु तुम जान-बूझकर ताल बिगाड़ देते हो। अतएव मुझसे मिलना यदि सचुमच अभिप्रेत हो तो ताल मत बिगाड़ना भला। पहली अथवा दूसरी नृत्य-थेई जैसे ही समपर आयी कि बस, तत्क्षण महाभाव रस-सिन्धु, तुम जो एक गौर वर्णका चोला पहनकर अग्रजका अभिनय कर रहे हो, उस चोलेको वह महाभाव रससिन्धु तत्क्षण डुबा देगा और अपनेमें ही मिला लेगा। महाभाव-रससिन्धुका अर्थ समझ गये न? नहीं समझे हो तो समझ लो। इसका अर्थ है अनुज रूपी चोला।

एक खेल था भला, जहाँ तुमने अग्रजका चोला पहना था और मैंने जो चोला पहना था, उसका पता तुम्हें है ही। स्पष्ट फिरसे करवाना चाहते हो तो उस चोलेका नाम था अनुज। अब सोचो, उस प्राचीन खेलको स्मरण करो। स्मृति है न महीपाल-लीलाकी? उस लीलाको भूल गये हो तो याद कर लेना और यदि याद न आवे तो कोई बात नहीं, परन्तु 'महीपाल' की एक रुचि थी, उस रुचिको यदि स्वीकार करके वह अनुजरूपी चोला लौकिक सम्बन्धका आदर करते हुए संसारसे सम्बद्ध प्रीतिका ही परिचय देता तो अबतक 'अधिकारिणी और महीपाल' अपने सच्चिन्मय मंजिलपर पहुँच ही नहीं पाते। मायाका ताप, जो सारे विश्वको जला रहा है और जो उनको भी जला रहा था, वह ताप नहीं मिटता और कृष्ण-तरुवरकी छाँह उन्हें नहीं मिलती। 'कृष्ण तरुवर' समझ गये न कि क्या वस्तु होती है? नहीं समझते हो तो मैं खोलकर कहूँगी नहीं।

एक बात और है। अग्रजके चोलेका निर्माण जब दर्जीने किया और फिर जब अनुजके चोलेका निर्माण किया तो एक खेल हो गया था। अब उसे भूल गये हो तो कोई उपाय नहीं। याद कर लो, पर ये दोनों चोले दो

स्थानपर रख दिये गये थे। अब दोनों चोलोंको दो स्थानपर रखकर ही खेल चल रहा था और चल रहा है, पर अनुजरूपी चोलेका एक खेल यह भी है कि अनुजरूपी चोलेसे जिन-जिनने नाता जोड़ रखा है, वे अन्तमें मरते-पचते वहीं पहुँचेंगे, जहाँपर कन्हैया नामका एक अहीर गाता रहता है। अब प्रश्न होता है कि अनुजरूपी चोला और अग्रजरूपी चोला, ये दोनों अलग-अलग क्यों रखे जाते हैं और क्यों नहीं उनको मिलने दिया जाता है? उसका सीधा उत्तर यह है कि सबके लिये एक अन्तिम घाटी पार करना अत्यन्त आवश्यक है। उस घाटीको पार किये बिना कोई आगे बढ़ ही नहीं सकता। वह घाटी है साँस छूटनेकी घाटी, जो सबको पार करनी ही पड़ेगी। उस घाटीको पार करते समय वह घाटी सबको अत्यन्त सुखद प्रतीत हो, माटीमें माटीके मिलनेका जब ठीक प्रश्न उपस्थित हो, उस समय वह घाटी भयानक न बनकर आह्लादजनक बन जाय, इसीके लिये दोनों चोले परस्पर न मिलें, यह विधान किया गया है।

इसीलिये विश्वासको अविचल रखो। आँख टिकी रहे व्रजपुरके नित्य निवास स्थलपर। यह नितान्त सत्य है कि इस उपवनके उसपार हम सभी मिल ही जायेंगे और कहीं जिद कर बैठोगे कि माया-सरिताके तटपर ही हम मिल जायँ तो इसमें हानि है।

* * *

यह संक्षिप्त भावार्थ है बाबा द्वारा दिये गये संदेशका। पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी बाबासे बिना मिले अपने गाँव लौट गये। उनके साथ बहिन आयी थीं, वे भी बिना मिले लौट गयीं। बाबासे उनका मिलन नहीं हो पाया, इसके लिये उनके मनके कोनेमें कुछ खिन्नता अवश्य थी, परन्तु मनमें यह भाव भी बहुत प्रबल था कि भाई (अर्थात् बाबा) की आध्यात्मिक उन्नतिमें हम बाधक क्यों बनें। पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबे, जो कल्याणके सम्पादकीय विभागके एक सम्माननीय सदस्य थे, उन्होंने उचित अवसर देखकर अत्यन्त दुखी मनसे बाबासे कहा – इतने दिनों बाद ये लोग आपसे मिलनेके लिये आये थे, किन्तु आपने मिलनेसे सर्वथा इंकार कर दिया। आप सबसे तो मिलते ही हैं। उनसे भी मिल लेते तो कौन-सी बात बिगड़ जाती?

श्रीदुबेजीकी बात सुनकर बाबाने अपने हाथमें पेंसिल ली और

स्लेटपर लिखकर बताने लगे – देखिये दुबेजी! मैं सबसे मिल सकता हूँ, किंतु उनसे ही नहीं मिल सकता। इस बहिनने मुझे गोदमें खिलाया है और मेरा मल-मूत्र भी साफ किया है। इस प्रकार यह मेरी बहिन ही नहीं, मेरी माँ भी है और भैयाके बारेमें क्या कहूँ? भैयाका भी कम ऋण मुझपर नहीं है। गाँवमें रात्रिके समय जब रामलीला होती थी तो भैया मुझे रामलीला दिखानेके लिये साथ ले जाते थे। रामलीला देखते-देखते मैं सो जाता था और लौटते समय भैया मुझे अपने कंधेपर लादे हुए घर ले आते थे।

इतना बताते-बताते बाबाके नेत्र सजल हो उठे। क्या वह सजलता दिखानेके लिये थी? या वह यों ही छलक आयी थी? नहीं, यह बात नहीं है। गोरखपुरमें रहते हुए भी गाँववाले बचपनके दिन याद आ गये थे। मनमें प्राचीन स्मृतियोंकी आँधी चल उठी थी। भावोंका ज्वार कुछ अधिक ही था। कुछ ठहरकर बाबाने स्लेटपर धीरे-धीरे लिखना आरम्भ किया – आज बड़ा कठिन समय आ गया है। यह युग बड़ा विकट है। हिन्दू जातिकी अत्यन्त दुरवस्था है। आजके प्रख्यात साधु और संन्यासी व्याख्यान तो बड़ा सुन्दर दे लेते हैं और अच्छी-अच्छी पुस्तकें भी लिख लेते हैं। उनसे वेदान्त और ब्रह्मज्ञानकी ऊँची-ऊँची बातें जितनी चाहिये, उतनी सुन लीजिये, किन्तु जीवनमें वह चीज अत्यल्प दिखलायी देती है, जो एक सच्चे संन्यासीके लिये आवश्यक है। आप मेरा अहंकार न मानें। मैं सर्वथा सत्य कह रहा हूँ कि मेरी दृष्टिमें प्रसूतिगृहके मंगलदीपमें और श्मशानकी प्रज्वलित चिताग्निमें कोई अन्तर नहीं है। सुगन्धपूर्ण चन्दन एवं दुर्गन्धपूरित पुरीषमें तथा विद्वान ब्राह्मण एवं क्षुद्र कीटमें, सबमें एक ही प्रभुकी चिरन्तन सत्य सत्ता विद्यमान है। प्रभुके अतिरिक्त कहीं कुछ है ही नहीं, किन्तु संन्यास धर्मकी और इस गैरिक वस्त्रकी भी कुछ मर्यादा है और इसी कारण उस मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं अपने पूर्वाश्रमकी सहोदरा बहिन और सहोदर भाईसे नहीं मिल सका। इतना ही नहीं, इस जीवनमें अपने रक्तसे सम्बन्धित किसी व्यक्तिसे मिलूँगा भी नहीं। इस गैरिक वस्त्रकी गरिमा और मर्यादाकी रक्षा करनी ही है।

अब श्रीदुबेजीके पास कहनेके लिये कुछ था ही नहीं। वे नत मस्तक थे।

* * * * *

एक आदर्श विवाह

किसी वय-प्राप्त कन्याका सम्बन्ध कहीं पर निश्चित करते समय दोनों पक्षोंके मध्य लेन-देनकी जो बात आजकल प्रायः चलती है, यह चर्चा बाबाको अत्यधिक अप्रिय थी। दहेजके रूपमें कन्याका पिता विवाहके अवसरपर अपने सामर्थ्यके अनुसार प्रसन्न मनसे जो दे, उसके लिये बाबाके मनमें कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु वर-पक्षकी ओरसे कुछ माँग रखी जाय और उस माँगके स्वीकृत होनेपर ही सम्बन्ध निश्चित हो, यह सब उनको बड़ा अनुचित लगता था। बाबाकी इच्छा यह रहा करती थी कि लेन-देनके स्थान पर सहज प्रीतिका राज्य हो और दोनों पक्षोंकी ओरसे हार्दिक उल्लासका ही आदान-प्रदान रहे।

जजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के सबसे छोटे पुत्रका नाम जगदम्बाप्रसाद दीक्षित है। जब जगदम्बाप्रसादकी आयु विवाहके योग्य हो गयी तो श्रीजजसाहबके सामने उसके सम्बन्धके बारेमें प्रस्ताव आने लगे। जजसाहब विवाहके सम्बन्धमें बाबाकी रुचि जानना चाहते थे। जजसाहबका तन-मन-जीवन सब कुछ बाबूजी एवं बाबाके श्रीचरणोंपर समर्पित था। इतना ही नहीं, उनके सम्पूर्ण परिवारकी बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। बाबासे पूछे जानेपर उन्होंने कहा – यदि आप मेरी रुचि जानना चाहते हैं तो मेरा यही निवेदन है कि प्रिय जगदम्बाका विवाह आदर्श रूपमें हो। वह आदर्श समाजके लिये एक उदाहरण बन जाय। प्रायः देखने-सुननेमें आता है कि माता-पिताके पास धनकी कमी है अथवा अभाव है, परन्तु लोकाचारके कारण लेन-देनमें, बाजे-गाजेमें, साज-सजावटमें, स्वागत-सत्कारमें शक्तिसे अधिक व्यय करना पड़ता है और उनको भारी ऋणके भारके नीचे दब जाना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि प्रिय जगदम्बाका विवाह लोगोंके लिये एक प्रेरणा प्रदायक उदाहरण बन जाये।

जजसाहबने विनम्र स्वरमें कहा – आपको इतना अधिक कहने-बतलानेकी आवश्यकता है ही नहीं। आपकी रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है। प्रिय जगदम्बा और उसकी माँ तथा परिवारके अन्य लोग यही चाहते हैं कि जैसा बाबा कहें, वैसा ही हो।

जजसाहबके उत्तरसे बाबाको आन्तरिक प्रसन्नता हुई। बाबाके एक

निज जन थे परमादरणीय श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय। श्रीपाण्डेयजी पहले 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे और गीतावाटिकासे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर पालड़ी बाजार ग्राममें रहते थे। सन् १९४५ में बाबाने गीतावाटिकामें सर्व प्रथम श्रीराधाजन्माष्टमीका उत्सव मनाया था और सन् १९४६ में कुछ विशेष परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेपर यह गीतावाटिकामें नहीं मनाया गया, बल्कि पालड़ी बाजार ग्राममें श्रीपाण्डेयजीके घरपर श्रीराधाजन्मोत्सवके कार्यक्रम संक्षिप्त रूपमें सम्पन्न हुए। कुछ समय बाद श्रीपाण्डेयजी गोरखपुरसे बम्बई चले गये।

(यहाँ मैं उनका एक विशेष परिचय और देना चाहता हूँ। सम्मान्य श्रीरामानन्दजी सागर द्वारा रामायण सीरियलका निर्माण हुआ है, जिसको सारे भारतने टी.वी. पर देखा है। इस रामायण सीरियलकी देश-विदेशमें बड़ी विख्याति हुई। इस सीरियलके निर्माण-कालमें श्रीपाण्डेयजीका सराहनीय योगदान रहा है।)

पाण्डयेजीकी लाडली पुत्री लाडली पद्मा सयानी हो गयी थी। पाण्डेयजीसे भी बाबाने वही बात कही, जो उन्होंने जजसाहबसे कही थी। वे तो बाबाके निज जन थे ही। उन्होंने भी सारी बातें सहर्ष स्वीकार कर ली और लाडली पद्माका सम्बन्ध प्रिय जगदम्बासे निश्चित हो गया। निर्णय यह भी हुआ कि विवाह गोरखपुरमें बाबा एवं बाबूजीके सामने ही होगा।

विवाहके समय जजसाहबके परिवारके सभी लोग इलाहाबादसे गोरखपुर आ गये। पाण्डेयजीका परिवार भी बम्बईसे गोरखपुर आ गया और उनके परिवारको ठहराया गया भाई श्रीदूलीचन्दजीके मकानमें। विवाहके दिन दुजारी भवनमें कोई साज-सजावट नहीं थी। दूल्हा जगदम्बाके साथ बरातीके रूपमें दीक्षित परिवारके सदस्य और गीतावाटिकाके हमलोग थे। बाजा-गाजा भी नहीं था, अपितु बाजेके स्थानपर बाबाके प्रिय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी पैदल चलते हुए हारमोनियमपर उच्च स्वरसे श्रीहरिनाम-संकीर्तन करवा रहे थे और हमलोग उनके पीछे-पीछे बोल रहे थे। ३० जनवरी १९६७ के दिन शुभ मुहूर्तमें यह विवाह सनातन शास्त्रीय पद्धतिसे सम्पन्न हुआ, किन्तु वैवाहिक कार्यक्रमोंमें न कोई आडम्बर था और न कोई लेन-देन था। इस विवाहकी आदर्श सम्पन्नतापर बाबाको आन्तरिक संतोष था और हम सभी लोगोंका मन सात्त्विक उल्लाससे भरा

हुआ था।

बाबूजीका मन भी परम सात्त्विक उल्लाससे भरा हुआ था और उन्होंने निज जनोंके मध्य कहा – हिन्दू धर्ममें विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। अन्य मतावलम्बियोंके लिये यह एक शर्तनामा (Contract) हो सकता है, परन्तु हिन्दूके लिये विवाह एक आध्यात्मिक साधना है, जिसका लक्ष्य है धर्मपूर्वक अर्थ और कामका सेवन करते हुए मोक्षकी प्राप्ति। हिन्दू जीवनमें विवाह वह संगीत है, जिसकी स्वर-लहरी युगलके विचार और व्यवहारमें मधुरता भर देती है। विवाहोल्लास वस्तुतः है समर्पण-महोत्सव, जहाँ दो मिलकर एक हो जाते हैं। यह एकात्म भाव ही हिन्दू विवाहकी विशिष्टता है।

* * *

प्रसंगानुरोधसे एक और घटना स्मृतिमें उभर रही है और वह कथनीय भी है। मेरे परमादरणीय आत्मीयजन श्रीअष्टभुजाप्रसादजी मल्लकी सुपुत्री लाडली नीरजाका मंगल परिणय गोरखपुरमें ही हुआ। वर-पक्ष कहाँका था और बरात कहाँसे आयी थी, यह मुझे याद नहीं आ रहा है, परन्तु पूर्व निर्णयके अनुसार यह मांगलिक कृत्य गोरखपुरमें सम्पन्न हुआ। लाडली नीरजा क्षत्रिय-नरेश-कुलोत्पन्ना राजपुत्री है और अधिकांश रजवाड़ोंमें ऐसी परम्परा है कि बरातियोंके मनोरंजनके लिये रात्रिमें वह महफिल जमे, जिसमें वेश्या-नृत्य हो।

बाबा इस नीति-रीतिमें भी सुधार चाहते थे और उनके प्रयाससे एक आदर्श सुधारकी प्रतिष्ठा हुई। बरातियोंके सम्मान और मनोरंजनके लिये रातके समय महफिल जमी, परन्तु उसे महफिल न कहकर कहना चाहिये एक भव्य समारोह। इस समारोहमें श्रीकृष्णलीलाका प्रस्तुतीकरण हुआ और लीला अभिनीत हुई रासमण्डलीके द्वारा। बाबाके निर्देशपर वृन्दावनसे श्रीश्रीरामफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली यहाँ आयी थी। बाबा तो सामाजिक जीवनमें पदे-पदे स्नेह और सादगीको, सात्त्विकता और सहजताको प्रतिष्ठित देखना चाहते थे और उस दृष्टिसे ये कुछ उल्लेखनीय प्रसंग हैं।

* * * * *

द्वितीय काष्ठमौन पर प्रवचन

बाबा समय-समयपर अल्प अवधि अथवा दीर्घ अवधिके लिये मौन व्रत लेते रहते थे। बाबाने ७ अप्रैल १९६७ की मध्य रात्रिके कुछ समय उपरान्त जब दूसरी बार काष्ठ मौन लिया, इसके पाँच-छः घंटे बाद ८ अप्रैलको अपने प्रातःकालीन प्रवचनमें बाबूजीने बाबाकी भाव-स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए कहा –

स्वामीजीका मौन व्रत आजसे आरम्भ हो गया। इन दिनों स्वामीजीके पास जो लोग बहुत आये-गये, जिन लोगोंसे स्वामीजीने बड़ी स्वच्छन्दतासे बात-चीत की, बहुत प्रेमका स्नेहसना व्यवहार किया, बड़ा अमृत उडेला, अब उन लोगोंके मनमें स्वामीजीके न बोलनेकी स्थिति उत्पन्न हो जानेसे क्षोभ होना स्वाभाविक है। अभीकी बात है कि मेरे घरके लोग, इतना ही नहीं, बच्चे और बूढ़े-बूढ़े लोग भी मेरे पास आये और रोने लगे। यह स्वाभाविक ही है। जिनसे लाभ मिला, जिनसे प्यार मिला, जिनसे स्नेह मिला, जिनसे अमृत मिला, उसका स्रोत यदि कहीं बन्द होता-सा दिखलायी दे तो स्वाभाविक ही मनमें क्षोभ होता है। पर स्वामीजीका यह मौन असलमें नया नहीं है। जो लोग बिलकुल नये नहीं हैं, वे जानते हैं कि लगभग दस वर्ष पहले इसी पंडालमें काष्ठमौनकी घोषणा स्वामीजीने की थी।

काष्ठमौनका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु 'जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना' – यह होता है काष्ठमौन। उसका विधान इस प्रकार है कि जो काष्ठमौन व्रत ले, वह सब कुछ परित्याग करके घरसे चल दे, कुटियासे चल दे हिमालयकी ओर। चलनेके लिये चल दे। उसके मनमें कहींपर विश्राम करनेके लिये अथवा ठहरनेके लिये संकल्प न हो। चलते-चलते दैवकी प्रेरणासे रास्तेमें कोई कुछ खिला दे तो खा ले, कोई कुछ पिला दे तो पी ले। जहाँ शरीर अशक्त होकर गिर जाये, वहाँ नींद ले ले। फिर उठकर चल दे। इस प्रकार चलते-चलते जहाँ अन्तिम रूपमें शरीर गिर जाये, वहाँ गिर जाये। उस दिन इसी पंडालमें काष्ठमौनका यही अर्थ स्वामीजीने समझाया था। उन्होंने कहा था कि इसीको लक्ष्य

करके मैंने काष्ठ-मौनका मनमें विचार किया था और यही विचार है, परंतु इस प्रकारसे इतना कड़ा व्रत कुछ ठीक नहीं रहता। इसलिये किसीकी ओर न देखना, किसी प्रकारका संकल्प न करना, इशारेसे भी किसी बातका किसी तरह उत्तर न देना, ऐसा व्रत उन्होंने लिया और कई वर्षोंतक उन्होंने किसीकी ओर देखातक नहीं। आगे चलकर कुछ ऐसी कठिन समस्याएँ सामने आयीं कि उनके मौन व्रतमें कुछ शिथिलता आयी। वह शिथिलता भी, उनके स्वरूपमें शिथिलता नहीं, अपितु पद्धतिमें शिथिलता आयी। क्रमशः शिथिलता बढ़ती गयी। फिर उस शिथिलताको विराम देनेके लिये पुनः यह कलवाला रूप सामने आ गया।

कुछ भीतरी बातें ऐसी हैं, जिनको मैं संकेत रूपसे ही कह सकता हूँ। सब बात तो कहना उचित नहीं। काष्ठमौनमें और स्वामीजीके काष्ठमौनमें थोड़ा-सा अन्तर है। ये सब साधनाके क्षेत्रमें सिद्धांतकी बातें हैं। एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गोंमें ही तत्त्वज्ञान अपेक्षित है। रस-मार्गका सिद्ध पुरुष तत्त्वज्ञानसे रहित नहीं होता और तत्त्वज्ञानीमें तत्त्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे न हो। दोनोंमें इतना-सा अन्तर है। तत्त्वज्ञानीमें रस चाहे न हो, पर वह तत्त्वमें स्थित होता है, ब्रह्मनिष्ठ होता है, मुक्त होता है। इसी प्रकार रस-सिद्ध पुरुष भी तत्त्वज्ञानी होते ही हैं। उनकी दृष्टिमें जगत वैसा नहीं रहता, जैसा हम सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें है। वे जगतसे मुक्त हो जाते हैं, परंतु उनमें एक प्रकारके रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और उन तरंगोंमें वह लहराता है। कभी-कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। इस प्रकारसे समुद्रमें डूबे हुए लोगोंके उदाहरणस्वरूप वर्तमानमें हमारे सामने थे श्रीचैतन्य महाप्रभु। अन्तिम गम्भीरा लीलाके समय वे इस रस-समुद्रके तटपर भी नहीं आये, उसीमें डूबे रहे। उसी प्रकारसे स्वामीजीका जो काष्ठमौन था, वह काष्ठमौन केवल तत्त्वज्ञानमें स्थितिजनित पंचम भूमिकातक वाला नहीं, क्रियाके अभावके स्वरूपवाला नहीं, अपितु रस-समुद्रके लहरानेके स्वरूपवाला है। बस, इतना इसमें और उसमें अन्तर है। यह काष्ठमौन रसका है और वह काष्ठमौन तत्त्वज्ञानका है।

पहले ये श्रीराजेन्द्रबाबूजीके साथ राजनैतिक क्षेत्रमें काम करते थे। वे उम्रमें कुछ बड़े थे और ये छोटे थे, पर उनके साथ बिहारमें काम करते थे। ये स्कूलसे निकलकर जेल गये और जेलमें कई दिनोंतक रहे। भगवानकी लीला विचित्र होती है। मनुष्यको पतातक नहीं लगता कि भगवान किसको कैसे किस मार्गमें ले जाना चाहते हैं, पर वे ले जाते हैं। राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करते-करते उसी जेलमें इनके मनमें कुछ दूसरे प्रकारके भाव आये। जेलमें ही और जेलसे निकलनेके बाद इन्होंने अध्ययन किया। शुरूसे ही ये बड़े प्रतिभाशाली थे। कालेजसे पहले ही स्कूलमें ही इनकी प्रतिभाका ज्ञान अध्यापकोंको और अधिकारियोंको हो चुका था। इन्होंने अद्वैत तत्त्वका अन्वेषण, अध्ययन और साधन किया और ये उसमें बहुत आगे बढ़ गये। कलकत्तेमें ये बड़े विरक्त भावसे रहते, कभी फुटपाथपर पड़े रहते। कहीं खानेको मिल गया, खा लेते और जो मिल गया, ले लेते।

श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) का गीतापर विवेचन बड़ा सुन्दर हुआ करता था। इनके मनमें उनके पास जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। ये चले गये बाँकुड़ा। बाँकुड़ा जाकर ये श्रीसेठजीके पास रहे। यह जो गीता-तत्त्व-विवेचनी टीका है, इसमें भाव श्रीसेठजीके हैं, पर इस सारी टीकाको मूलतः इन्होंने अपने हाथसे लिखी है और इसमें टिप्पणी और सारा संशोधन मेरा किया हुआ है। वहाँ ये श्रीसेठजीके पास रहने लगे। ये बड़े कट्टर निर्गुणवादी थे। श्रीसेठजी यद्यपि अद्वैत निर्गुण तत्त्वके ही परिपोषक थे, इसपर भी वे साधनाके क्षेत्रमें सगुण तत्त्वका भी निरूपण किया करते थे और ये उसे माया कहकर खण्डन कर देते थे। इनका आपसमें तर्क-वितर्क चलता। तर्क-वितर्कमें कहीं कटुता नहीं आती। यह होता बड़ा सुन्दर और आनन्दपूर्ण, पर तर्क-वितर्कमें एक-दूसरेको समझा सकें, ऐसी स्थिति नहीं आयी। श्रीसेठजीके पास अनुभव था, पर गीताके अतिरिक्त अन्य शास्त्र नहीं था और इनके पास बड़ा भारी अध्ययन था। जब ब्रह्मसूत्रके सूत्रोंको लेकर और उपनिषदोंके मन्त्रोंको लेकर ये अपने मतको पुष्ट करने लगते, तब श्रीसेठजी सिद्धान्तकी बात तो कह देते, पर वे उत्तरका प्रत्युत्तर नहीं दे पाते। श्रीसेठजी उस प्रकारकी शास्त्रीय भाषामें अपने मतका प्रतिपादन नहीं कर पाते थे। एक दिन श्रीसेठजीने

कहा – स्वामीजी! आप भाई हनुमानके पास चले जाइये।

श्रीसेठजी मेरे बड़े मौसेरे भाई लगते थे। मैं उनसे छोटा था, अतः वे मुझे हनुमान ही कहते थे। श्रीसेठजीके ऐसा कहनेपर स्वामीजीने कहा – वहाँ जाकर क्या करना है?

श्रीसेठजीने कहा – आप एक बार हो तो आइये।

उन्होंने टिकट कटवा दी और ये यहाँ आ गये। उस समय यहाँ साल भरका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन चल रहा था। अखण्ड कीर्तनके साधकोंके लिये घासकी बहुत-सी कुटियाएँ यहाँ बनी हुई थीं, इनको एक छोटी-सी कुटिया रहनेके लिये दे दी गयी। इन्होंने मुझसे बतलाया कि मैं किसलिये आया हूँ। मैंने कहा कि मैं तो कुछ जानता हूँ नहीं, पर आप रहिये।

यहाँ आनेके पश्चात् ये बिलकुल बदल गये। बदलते-बदलते ये रस-तत्त्वमें प्रवेश करके व्रज-रसके उपासक बन गये। दो चीज होती है। रस-तत्त्ववाले अद्धैतके विरोधी होते हैं और अद्धैत-तत्त्ववाले रस-तत्त्वको अज्ञानकी भूमिकामें मानते हैं। अद्धैत मतावलम्बी सम्प्रदायमें कुछ ऐसे भी हैं, जो भगवानको भी मायाकी वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि ईश्वर मायोपाधिक हैं तथा जीव अविद्योपाधिक है। अविद्या और मायाका निरसन हुआ कि न जीव है और न ईश्वर है। वे ईश्वरकी सत्ता भी तत्त्वतः स्वीकार नहीं करते। बस, साधनकालमें ईश्वरका उपयोग करना मानते हैं। वे अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ईश्वरका स्तवन करना, पूजन करना आवश्यक मानते हैं। इसलिये वे कहते हैं कि साधनाकालमें उपासना भी बड़ी लाभदायक होती है, पर उपास्य ईश्वर कोई तत्त्वकी वस्तु नहीं, अपितु वह तो साधनाकी चीज है। इसी तरहसे रस-तत्त्वके लोग भी अद्धैत-तत्त्वका बड़ा मखौल उड़ाया करते हैं और इसे जड़ तथा आकाशकी भाँति शून्य कहकर उपहास किया करते हैं। वह उपहास कुछ तो उनका विनोद होता है (और विनोदमें तो कोई आपत्ति नहीं), कुछ वह शास्त्रार्थके लिये हठ होता है, कुछ वह दुराग्रह होता है, (जो अच्छा नहीं) और कुछ तो वह अज्ञान ही होता है, जिसका दोनों ओरसे निरसन ही होना चाहिये। ये कुछ सिद्धान्तकी बातें हैं। अद्वैत-तत्त्वमें स्वामीजीकी निष्ठा होते हुए भी रस-तत्त्वमें इनका प्रवेश हुआ और वह प्रवेश उत्तरोत्तर वर्धित होता चला

गया। जो इनके अन्तरंग जीवनके सम्पर्कमें आये हैं, उनको मालूम है कि महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूप-रेखा शायद जीव गोस्वामीजी तकने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभवमें आयी। वे ब्रज-रसके उपासक बन गये और उसकी उत्तरोत्तर पुष्टि होती गयी और उसीका परिणाम था इनका पूर्वका काष्ठमौन। इस प्रकारसे इनका काष्ठमौन असलमें इनका रस-समुद्रमें निमज्जन है और रस-सागरमें जो भावतरंगें उठा करती हैं, सम्भव है, वे इनके जीवनमें उठें। कैसे उठें, क्या उठें, तरंगोंका कुछ पता नहीं चलता। इसलिये इनकी यह वस्तु आजकी कोई नयी नहीं, पुरानी चीज है और अवश्य ही साधनाके क्षेत्रमें यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक-दूसरेके अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ एक रूपमें रहते हों। ये रहे हैं पहले। ऐसा नारदादिमें था। भगवान शंकराचार्यमें भी ऐसा माना जाता है, लेकिन ये उदाहरण विरल होते हैं, बहुत कम होते हैं। इससे लोगोंको शिक्षा लेनी चाहिये।

जो लोग ऐसा समझते हैं कि स्वामीजीके मौन हो जानेसे अब हम लाभसे वंचित हो गये, यह उनकी भूल है। असली बात तो यह है कि लाभसे वंचित होता है भावसे रहित व्यक्ति। शास्त्रोंमें संतकी महिमा तो यहाँतक कही गयी है कि यदि किसी देशमें संतका अस्तित्व है, भले वह किसीसे बोलता नहीं, मिलता नहीं, वह बातचीत तो करता ही नहीं, कोई उसे जानता नहीं, किंतु यदि उसका अस्तित्व है तो उस अस्तित्वसे ही जितने अंशतक उस संतमें प्रागल्भ्य है, जितना उसका तेज है, उसके अनुपातसे जगतको लाभ अपने आप होता है। जैसे कहीं बर्फ ढकी हुई रखी हो और हमको दिखलायी नहीं दे, भले न दीखे, पर उसकी ठण्ड हमें मिलेगी ही। इसी प्रकारसे संतका रहना जगतमें लाभदायक है।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी संतमें किसी व्यक्तिकी वास्तविक श्रद्धा, विश्वास या प्रेम-प्रीति है, तो संतके अंदर जो भाव हैं, उन भावोंका संक्रमण उस प्रेमीमें अपने आप होता रहेगा। वह संत न मिले, न बातचीत करे तो कोई बात नहीं, पर उन भावोंका संक्रमण अपने आप होता रहेगा।

तीसरी बात इससे भी और अधिक आवश्यक है संतकी सेवाके विषयमें। यह बड़ा सुन्दर है और सराहनीय है कि उनके न बोलनेके कारण हमें बोलीके वियोगमें दुःख होता है, पर जो उनकी सेवा करना चाहते हैं, उनके लिये उचित यह है कि हमने उनसे जो सीखा है, उन्होंने विभिन्न प्रकारसे जो शिक्षा दी है और इन दिनोंमें आने-जानेवाले लोगोंसे जिसके लिये जो उन्होंने कहा है, जैसे तुम सत्य बोला करो, तुम गरीबकी सेवा किया करो, तुम अमुक नामका इतना जप किया करो, तुम इतना पाठ किया करो, उसे अपने जीवनका व्रत मानकर अपने जीवनमें उतार लें। उनकी रुचिके अनुसार जीवन बनानेसे सच्ची सेवा होगी और उनके द्वारा लाभ प्राप्त करनेका यह बड़ा माध्यम सिद्ध होगा।

स्वामीजी आज मौन हो गये। उनका मौन होना बड़ा मंगलमय! वे यदि रस-समुद्रमें डूबें और डूब जायें हमेशाके लिये तो स्वाभाविक ही उसके कुछ कण हमलोगोंको मिलेंगे ही। उनका डूबना बड़ा अच्छा!

* * * * *

बात-बात में सँभाल

बाबाने दूसरी बार काष्ठ मौन व्रत लिया। व्रत लेते ही अन्तर्मुखताकी गम्भीर स्थितिमें बाबाके सँभालकी आवश्यकता बहुत बढ़ गयी और बाबूजी बहुत अधिक ध्यान रखने लगे। बाबूजीके साथ नित्य रहनेके कारण गोरखपुरसे बाहर जानेका अवसर बाबाके सामने अनेक बार आया है। बाहर जानेपर बाबूजी ही बाबाको अपने साथ लेकर चलते थे। किस रास्तेसे जाना है, किस दिशामें जाना है, सीढ़ीपर चढ़ना है या उतरना है, मोटरमें चढ़ना है या क्या करना है, यह बाबाको भला क्या पता? रास्ते भर बाबूजी ही बाबाकी सँभाल रखते थे। इस सँभालकी क्या कहीं कोई तुलना हो सकती है?

जब बाबा पुरानीवाली कुटियामें रहा करते थे, तब कई बार बाबा आनेवाले, मिलनेवाले सज्जनोंको प्रणाम किया करते थे। बाबाकी दृष्टिमें सभी भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। बाबाके पास आनेवाले लोग संख्यामें बहुत अधिक हुआ करते थे। जबतक वे आगन्तुक सज्जन

बाबाको प्रणाम करते, तबतक बाबा भी उनको प्रणाम करते रहते थे, अतः यह क्रम बहुत देरतक चलता रहता था। जमीनपर बार-बार माथा टेकते-टेकते बाबाके ललाटमें सूजन हो जाया करती थी। इस सूजनको देखकर बाबूजीका अन्तर व्यथित हो उठता। तब बाबूजी बाबाके ललाटपर अपनी हथेली लगा दिया करते थे, इसलिये कि लोगोंको प्रणाम करते समय जमीनकी रगड़ बाबाके ललाटपर न लगे। जब बाबूजी हथेली लगाते, तब बाबाको भान होता कि उनके द्वारा कोई ऐसी क्रिया हो रही है, जिसे बाबूजी उचित नहीं समझते। उसी समय बाबाके मनमें यह बात आती कि फिर मेरे द्वारा वह क्रिया हो ही क्यों, जिसे बाबूजी अभीष्ट नहीं समझते। बाबाके मनमें यह बात उठती, पर फिर जब बाबा देखते कि कोई मुझे प्रणाम कर रहा है तो बाबा भी सामनेवालोंको प्रणाम करने लगते। ऐसी स्थितिमें बाबूजी ही सामनेवाले लोगोंको मना करते कि आप प्रणाम न करें, अन्यथा बाबा द्वारा प्रणाम किया जाना बन्द नहीं होगा।

बाबाकी सँभाल बाबूजी बात-बातमें किया करते थे। बाबाके सुख-दुखके बारेमें बाबूजीका मन सदैव सावधान रहा करता था।

* * * * *

परिक्रमा के समय दिव्यानुभूति

परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी मानवीय कोमलताकी साक्षात् स्वरूप थीं। उनकी मनोविज्ञान शास्त्रमें गहरी पैठ थी। परदुःख-कातरता तो उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। नखशिख सत्त्वसम्पन्ना बहिन श्रीदेवकीजीके महान संतोचित व्यक्तित्त्वका निर्माण हो पाया था 'मानव सेवा संघ' संस्थाके संस्थापक परमपूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके चरणाश्रयमें रहनेसे। बहिनजी श्रीस्वामीजी महाराजके आनुगत्यमें रहकर अपने जीवनको सफल बना रही थीं।

श्रीस्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके उपरान्त बहिनजीके ऊपर ही मानव सेवा संघके संचालनका सारा दायित्व आ गया था।

श्रीस्वामीजी महाराज ग्रीष्म ऋतुमें स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे

और गीता भवनमें उनका नित्य प्रवचन हुआ करता था।

एक बार श्रीस्वामीजी महाराजके सांनिध्यका लाभ उठानेकी भावनासे परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी स्वर्गाश्रम आयीं और वे गीताभवनमें ठहरी हुई थीं। फिर वे गीताभवनसे डालमिया कोठी बाबूजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। यह संयोगकी बात है कि उस समय बाबा डालमिया कोठीमें घेरेके भीतर श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा रहे थे। बहिनजी खड़ी होकर परिक्रमाका दर्शन करने लगीं और उस समय उन्हें बड़ा दिव्यानुभव हुआ। बहिनजी डालमिया कोठीसे विदा होकर जब श्रीस्वामीजी महाराजके पास गयीं तो अपने दिव्यानुभवका वर्णन करते हुए कहने लगीं – जब मैं डालमिया कोठीमें पहुँची तो बाबा परिक्रमा लगा रहे थे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानो धरतीसे प्यार उभर रहा है, आकाशसे प्यार बरस रहा है, हर दिशासे प्यार उमड़ रहा है और मैं प्यारकी लहरोंके आवर्तमें हूँ। प्यारकी तरंगें मेरे शरीरका स्पर्श कर रही हैं। वे तरंगें मेरे हृदयमें भरती चली जा रही हैं। मेरे भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सर्वत्र प्यार-ही-प्यार परिव्याप्त हो रहा है। यह मेरे लिये एक दिव्यानुभव था।

इस दिव्यानुभवको सुनकर श्रीस्वामीजी महाराजने कहा – अरे! यह तो स्वाभाविक बात है। तुम तो मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाकी प्रक्रियाको भलीभाँति समझती हो। जो वस्तु व्यक्तिके भीतर होती है, वही बाहर विस्फुटित-वितरित होती है। राधाभावापन्न बाबा तो प्यारकी प्रतिमा हैं। उनके समीप तुमको ऐसा अनुभव हो तो इसमें विस्मयकी भला क्या बात है?

बहिन देवकीजी मौन और नतमस्तक थीं।

* * * * *

भावोच्छलन और जडिमा-भाव

प्रसंग २९ मई १९६८ का है और है स्वर्गाश्रमका। ऋषिकेशसे लगभग तीन मील दूर भगवती गंगाके उसपार स्वर्गाश्रम नामक स्थान है और वहीं गंगाजीके पावन प्रवाहके तटपर ही गीताभवन है, जहाँ सत्संग और संत-समागमकी सुन्दर व्यवस्था है। बाबूजी गोरखपुरसे चैत्र

मासमें स्वर्गाश्रम चले आया करते थे और डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठी भी भगवती गंगाके तटपर ही है। यदि गंगाजीके पावन प्रवाहके साथ-साथ हम चलें तो पहले डालमिया कोठी है, इसके बाद बूबना भवन है, इसके बाद गीता भवन है और इसके बाद परमार्थ निकेतन आदि अनेक भवन आश्रम हैं। ये सभी गंगाजीके तटपर ही हैं। बाबूजी तो डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठीके भीतर एक छोटा-सा बाड़ा था। बाड़ेके भीतर एक छोटा-सा भवन था, जिसे हम लोग अपनी ऐकान्तिक भाषामें 'राधा कुञ्ज' कहा करते थे। यह राधा कुञ्ज दो मञ्जिल वाला है, नीचे मंजिलमें एक कमरा और ऊपर मंजिलमें एक कमरा। राधा कुञ्जके ऊपरवाले कमरेमें बाबाका निवास रहा करता था और उस निवास कक्षका दर्शन सहज ही मिल जाया करता था उन लोगोंको, जो बगलवाले बूबना भवनकी दूसरी मंजिलपर स्थित सात-आठ कमरोंमें रहा करते थे। इन सात-आठ कमरोंमेंसे एक कमरा, जिसका नम्बर अस्सी था, उस कमरेमें भाई श्रीनटवरजी गोस्वामी (स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजी) ठहरे हुए थे। २९ मई १९६८ को भाई नटवरजीने अपने आत्मीयजनोंको इकट्ठा करके हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ किया। शुभारम्भ दोपहरके दो बजे हुआ। भाई नटवरजीने अपने हाथमें हारमोनियम लिया और कोई ढोलक तथा कोई मजीरा लेकर बैठ गया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी जयकारके साथ श्रीहरिनाम संकीर्तनका श्रीगणेश हुआ। सभी स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रीतिसे कीर्तन कर रहे थे और उच्च स्वरसे बोल रहे थे —

राधिका रमण अम्बुज नयन नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिका प्राण मन्मथ मथन विश्व रञ्जन कृष्ण हे।।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके नाम-रसकी लहरीमें भाई नटवरजी अपनी सुध-बुध खो रहे थे और यह नाम-खुमारी भी छूतका एक रोग है। सभी उपस्थित आत्मीयजन उस रस-धारामें डूब-उतरा रहे थे। उसी समय भाई नटवरजीने हितकुलावतंस श्रीहितहरिवंशजी महाराज द्वारा रचित रास-विहारके एक पदका गायन किया।

आज गुपाल रास रस खेलत पुलिन कल्पतरू तीर री सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत रोचक त्रिबिध समीर री सजनी।।

चले चलनेके लिये उन्होंने मन्द स्वरमें कहा, पर इस अनुरोधका न कोई प्रभाव पड़ा और न कोई प्रतिक्रिया हुई। बाबा जगतके प्रकृत धरातलपर होते, तभी तो उस अनुरोधकी कुछ सुनवायी हो पाती। जब भगतजी असफल हो गये तो वे माँको बुला लाये। बुला लानेमें भी पन्द्रह-बीस मिनट लग गये, पर बाबा पूर्ववत् जड़वत् खड़े रहे। माँने आकर अनुरोध किया। 'बाबा' 'बाबा' कहकर कई बार मीठे स्वरमें पुकारा। माँका सतत प्रयास यह था कि बाबाको कुछ चेतना आ जाय तो वे कमरेके भीतर चल चलें, पर उनके प्रयास भी सफल नहीं हुए। फिर माँका संकेत पानेपर श्रीभगतजी बाबूजीको बुला लाये। उन्होंने आकर देखा कि बाबा आधा-आधा हाथ उठाये हुए खड़े हैं, जेठ मासके तपते सूर्यकी गर्म-गर्म किरणें उनके गौर शरीरपर सीधी पड़ रही हैं और पैरोंके नीचे छत भी तप रही है। न जाने कैसे उनका कोमल शरीर जेठ मासके इस कठिन तापको सह रहा होगा! बाबूजीका हृदय भर आया। वे आगे आये और अपनी दोनों भुजाओंके बीच उनके काष्ठवत् शरीरको ले लिया। फिर धीरे-धीरे, किंतु बड़ी कठिनाईसे कमरेके भीतर उनको ले गये। भीतर जाकर बाबूजीने उनको गैरिक बिस्तरपर लिटा दिया। उनका कोमल शरीर भावावेगके कारण काष्ठवत् ही हो रहा था। बाबूजी उनके पास बैठ गये और उनके काष्ठवत् शरीरको धीरे-धीरे सहलाने लगे। बाबूजीद्वारा सहलाया जाना कोई साधारण बात थी क्या? उस सहलाये जानेके माध्यमसे न जाने किन-किन लोकोत्तर भाव-तरंगोंका रहस्यमय आदान-प्रदान हो रहा था। उस पारस्परिक आदान-प्रदानको हम साधारण जन भला क्या जानें और क्या समझें? बाबूजी बहुत देरतक बैठे हुए सहलाते रहे। जब बाबाका वह भावोच्छलन कुछ-कुछ प्रशमित हो गया, तभी वे प्रकृत धरातलपर आ पाये।

हमें यह पता नहीं है कि श्रीराधाभावापन्न बाबाके भावराज्यकी कौन-सी दिव्य लीला वहाँ विलसित हो रही थी और हमें यह भी पता नहीं है कि बाबाके अन्तरमें उभरा और उमड़ा हुआ वह भावोच्छलन कितना विस्तृत और विशाल था, पर यह तो स्पष्ट दिखलायी दे रहा था कि उस दिव्य लीलाके विस्तृत-विशाल भावोच्छलनने किस सीमातक बाबाके गौर और कोमल वपुको पाषाणके समान जड़वत् बना दिया था, जिसे न तापका अनुभव था, जिसपर न थकानका प्रभाव था और जहाँ न शब्दका श्रवण था। २९ मई १९६८ के दिन जिन-जिन भक्तोंको बाबाके गौर वपुमें

आविर्भूत जड़िमा-भावके दर्शनका शुभ अवसर मिला, वे सभी भाग्यशाली थे।

अन्तमें एक बात और कहनी है। बाबाकी इस स्थितिपर टिप्पणी करते हुए बाबूजीने कहा था – महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीके दिव्य जड़िमा-भावका किंचिदंशमें यह प्रकाश था।

* * * * *

उच्छिष्ट कणों का प्रभाव

एक अमेरिकन माताजी थीं। उनका नाम था श्रीईरीन। वे बाबाके सम्पर्कमें आयीं तब, जब १९६५ में श्रीभागवत भवनका मथुरामें शिलान्यास हुआ था। शिलान्यासके निमित्तसे ही बाबूजी और बाबा गोरखपुरसे मथुरा गये थे और मथुरा-वृन्दावनके मध्य बिड़ला मन्दिरमें ठहरे थे। बाबा तो सर्वथा मौन रहते थे। उनके मौनमें कोई बाधा उपस्थित न हो, इसलिये उनका कमरा एकदम अलग था, पर कभी-कभी वे बाहर निकलते ही थे। बस, इसी अवसरकी ताकमें वे माताजी रहा करती थीं और जब भी दर्शन मिलता, वे बाबाको एकटक निहारती रहतीं और आसुओंकी धारसे अपने कपोलोंको भिगोती रहतीं। इन माताजीने किसीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली थी और नया नाम था श्रीसत्यप्रेमानन्दजी। इनका एक नाम मञ्जुश्री भी था। वे भारतमें आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर आयी थीं और अनेक आश्रमों और संतोंके पास गयीं, किन्तु उनका मन कहीं भी न रम पाया और न टिक सका। वे तो उन्मुक्त स्वरसे कहती थीं – मुझे गीतावाटिकाके श्रीराधा बाबा जैसा खरा संत अभीतक मिला ही नहीं।

बाबाके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध थी। यह श्रद्धा भावना इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वे बाबाके पत्तलके उच्छिष्टको प्रसाद रूपमें पानेके लिये गहरी चाह करने लगीं। वे देखती रहती थीं कि बाबाकी भिक्षा हो जानेके बाद उनके अनन्य सेवक श्रीभगतजी जूठी पत्तल कहाँ फेंका करते हैं। उन्होंने देख लिया कि श्रीभगतजी जूठी पत्तलको एक कोनेमें फेंक आया करते थे। वे ताकमें तो थीं ही कि बाबाका कोई उच्छिष्ट पदार्थ पानेको मिले। एक बार जूठी पत्तल चुपचाप चोरी-चोरी प्राप्त करनेमें उन्हें सफलता मिल गयी। श्रीभगतजीद्वारा फेंकी गयी पत्तलमें यहाँ-वहाँ कुछ उच्छिष्ट कण

तो चिपके हुए थे ही। श्रीमञ्जुश्रीने उन कुछ उच्छिष्ट कणोंको बड़ी श्रद्धा पूर्वक पा लिया। उन कणोंको खाते ही उनमें भीतर-ही-भीतर विस्मयकारी परिवर्तन होने लगा और विचित्र अनुभूतियाँ होने लगीं। जो कुछ भी उनके अनुभवमें आया, उन सबको उन्होंने स्वयं ही बाबाको बतलाया। उनकी बात सुनकर बाबाने उनसे कहा – आपके सारे षट्-चक्र सक्रिय हो गये और अनोखी-अनोखी अनुभूतियाँ होने लगीं, यह सब पत्तलके उच्छिष्ट कणोंके सेवनका प्रभाव नहीं है, अपितु आपकी श्रद्धाका परिणाम है।

बाबाने भले ऐसा कहा, पर श्रीमञ्जुश्री माताजी इसे माननेके लिये तैयार नहीं थीं। उनकी भावना यही थी – बाबा स्वयंको छिपाये रखनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। यदि मेरी श्रद्धाका परिणाम है तो उच्छिष्ट कण ग्रहण करनेके पूर्व ऐसा क्यों नहीं हुआ और उन उच्छिष्ट कणोंको ग्रहण करते ही यह विस्मयकारी परिवर्तन कैसे और क्यों हो गया?

उनकी सुदृढ़ मान्यता थी कि जिनके उच्छिष्ट कणोंका यह प्रभाव है, वे स्वयंमें न जाने कितने महान होंगे!

* * * * *

एक घायल कौवा

सन १९७० ई. की श्रीराधाष्टमीके कुछ दिनों बादकी बात है। बाबाके शौचालयके पीछे एक कौवेको बन्दरोंने नोच डाला। उसकी छातीपर, गर्दनमें एवं पीठके पिछले भागमें गहरे घाव हो गये। उसका एक डैना टूट गया था। प्रातःकाल बाबा जब शौचके लिये उधर गये तो उन्हें वह कौवा दिखायी पड़ा। जीवमात्रको भगवत्स्वरूप माननेवाले बाबा कौवेके कष्टसे पीड़ित हो उठे। वे उसके उपचारमें लग गये। सेवकगण जुट गये। कौवेको उठाया गया। उसपर थोड़ा गंगाजल डाला गया, जिससे उसके घावोंपर लगी हुई मिट्टी घुल जाय, पानीके कारण उसमें ताजगी आ जाय तथा उसकी बेहोशी दूर हो जाय। गंगाजलसे धोनेसे कौवा कुछ होशमें आया। डा. चक्रवर्ती, जो बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक हैं, उनको फोन किया गया। वे तुरन्त घरसे चल पड़े। घरसे चलनेसे पूर्व उन्होंने बताया – उसे कोरामिनकी १५ बूँद, थोड़ा ग्लूकोज एवं जल दे दिया जाय।

तीनों चीजों मिलाकर चम्मचसे उसके मुँहमें डाली गयीं। कौवा पंख

फड़- फड़ाकर होशमें आ गया, पर एक डैना बुरी तरहसे टूट जानेसे वह उड़ नहीं पा रहा था। इतनेमें डाक्टर चक्रवर्ती आ गये। उन्होंने कौवेके घावोंको देखकर कहा – इसे बुरी तरह नोचा गया है।

घावोंपर सीवाजल पाउडर छिड़का गया। इतना उपचार पानेपर कौवा कुछ सँभल गया। डाक्टर साहबने कहा – मैं शामको या कल आकर फिर ड्रेसिंग कर दूँगा।

अब बाबाको चिन्ता हुई कि इसकी रक्षा कैसे हो। कहीं बन्दर फिरसे इस कौवेपर हमला न कर दें, नेवला-सियार-कुत्ता-बिल्ली उसे अपना भोजन न बना लें, चींटी-मकोड़े उसके घावको न खरोंच डालें, उसके परिवारके दूसरे कौवे आ-आ करके उसको ले जानेका असफल प्रयास न करें, ऐसी कई समस्याओंका समाधान करना था। बाबा स्वयं जुट गये इस व्यवस्थामें। वे मौन हैं, अतः बोल करके या संकेत करके अपना मनोभाव व्यक्त नहीं कर सकते। स्वयं उठकर जब कोई चीज वे उठाने लगते हैं या खोजते हैं तो उनकी चेष्टाओंसे अनुमान लगाया जाता है कि वे इस या उस चीजको चाहते हैं। तत्काल वह चीज जुटायी जाती। एक जालीदार पिंजड़ा आया, जो लगभग नौ इंच ऊँचा था। उसके भीतर पुवाल बिछाया गया। उसपर उस कौवेको लिटाया गया। पासमें एक परईमें पानी और दूसरी परईमें रोटीके टुकड़े रखे गये। अब पिंजड़ेके चारों ओरकी सुरक्षाकी व्यवस्था हुई। चारों ओर ईटोंको जोड़ा गया, जिससे कोई नेवला या सियार या कुत्ता या बिल्ली भीतर न घुस सके। चींटियोंसे बचाव करनेके लिये पिंजड़ेके चारों ओर पर्याप्त गैमेक्सिन पाउडर छिड़का गया। कोई पिंजड़ा खोल न दे, इसके लिये पिंजड़ेके कुण्डा लगवाया गया और उसमें ताला लगाकर चाबी सुरक्षित स्थानपर रखी गयी। पिंजड़ेमें हवा आनेकी पूरी व्यवस्था थी। साथ ही इस बातकी भी व्यवस्था की गयी कि वर्षा आते ही उसे ढक दिया जाय और वर्षाका पानी पिंजड़ेमें न जाय, पर पर्याप्त हवा भीतरतक पहुँचती रहे। इतनी व्यवस्थामें लगभग तीन-चार घंटे बाबाको लग गये। इतनी व्यवस्था करनेके पश्चात् बाबा अपनी कुटियामें गये।

कई सेवकोंने जिम्मेदारी ली है उसकी बराबर सँभाल करनेकी। थोड़ी-थोड़ी देरमें सेवकगण सँभाल करते रहे। कौवा प्रसन्न था, पर बाबाको कहाँ चैन! वे भी जब-जब कुटियासे बाहर आते हैं, तब-तब स्वयं पिंजड़ेके पास जाते हैं और कौवेकी सँभाल करते हैं। कौवेकी परईकी रोटी बदली

गयी कि नहीं, पानी नया रखा गया कि नहीं, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता रहती। इस प्रकार लगभग दो दिन वह जीवित रहा। उसकी सार-सँभालको देखकर एक सज्जनने कहा – इतनी सँभाल तो कोई अपने सगे पिताकी भी न करता, पर बाबाके लिये वह कौवा साक्षात् भगवत्स्वरूप है। यह सेवा भगवानकी अर्चना है, अतएव इसकी तुलना लौकिक सेवासे कैसे हो सकती है?

कौवेके प्राण पखेरू उड़ जानेपर बाबाने उसकी अन्त्येष्टिकी व्यवस्था की। उन्होंने श्रीगोस्वामीजी महाराज, श्रीनन्दबाबा, श्रीमोतीजी, श्रीदूबेजी आदि वरिष्ठ सात्त्विक पण्डितोंको बुलाया, कौवेको स्वयं अपने हाथों गंगाजलसे स्नान कराया, अपनी धोतीका कपड़ा मँगवाकर उसे पोंछा, उसके मस्तकपर शरीरपर चन्दन लगाया, तुलसीदल एवं गंगाजल उसके मुँहमें डाला और तुलसीदल उसके शरीरपर चढ़ाया। फिर अपनी गैरिक धोतीके कपड़ेमें उसे लपेटकर बाबाने उसे अपनी गोदमें ले लिया। इतना करके उस कौवेको लिये-लिये उन्होंने गिरिराजजीकी पाँच प्रदक्षिणा की। इसके बाद उन्होंने पण्डित समाजके साथ कीर्तन करते हुए अपने शौचालयके सामने, जहाँ वे इससे पूर्व कई जीवोंको समाधि दे चुके थे, उस कौवा महाराजको समाधि दी। जमीनको गहरा खुदवा करके और चारों ओर ईंट लगा करके बीचमें उसके शवको रखा गया तथा पुष्प आदि रखकर उसे मिट्टिसे ढक दिया गया। इस प्रकार कीर्तनके साथ उसकी अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई। अब सब पण्डितोंको सचैल स्नानका आदेश हुआ। ऐसी अन्त्येष्टिके द्वारा बाबाने प्यारका एक ऐसा अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया, जिसकी स्मृति मात्रसे हृदय पवित्र हो जाता है। भगवदीय प्यार क्या वस्तु है, उसकी कुछ झलक इस प्रसंगसे मिलती है।

* * * * *

बाबूजी का 'लीला-प्रवेश'

कैंसर रोग ही बाबूजीकी जीवन लीलाके लिये विघातक सिद्ध हुआ। सन् १९६९ के अप्रैल मासमें झटका आया उदर-शूलके रूपमें। तब किसीको भी यह अनुमान नहीं हो पाया कि इस उदर-शूलके रूपमें कैंसर ही अपना जाल फैला रहा है। अनुमान तो एक-डेढ़ साल बाद हो पाया।

बाबूजीकी रुग्णताको देखकर स्वास्थ्य-लाभके लिये बाबाने, परिवारके निज जनोंने तथा सभी आत्मीय जनोंने चिकित्सा-परिचर्याके रूपमें क्या नहीं किया, पर इस भीषण व्याधिके समक्ष सारे प्रयास असफल ही रहे।

बाबूजीने २२ मार्चको महाप्रयाण किया था। निधनके ७ दिन पहले बाबूजीकी स्थिति नाजुक हो गयी थी और ऐसा लगने लगा कि शायद वे अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दें। इस सम्भावनासे सभी पारिवारिक जन अत्यधिक विकल हो उठे। भावी कुपरिणामकी कल्पनासे सभी बेचैन थे।

बाबूजीके महाप्रस्थानसे दो दिन पहले अर्थात् २० मार्चकी बात है। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके लिये बाबा उनके कमरेसे, जिसे आजकल पावन-कक्ष कहा जाता है, उस कमरेसे बाहर निकले। भवनकी सीढ़ियोंसे उतरकर बाबा अपनी कुटियाकी ओर चले जा रहे थे। अपनी कुटियाके बाड़ेका दरवाजा खोलकर जब बाबाने कुटियामें प्रवेश किया तो उन्हें बाबूजीका अत्यन्त मीठा स्वर सुनाई दिया। बाबूजीने कहा – अब मेरे 'जानेका' समय हो गया है।

यह सुनकर बाबाने कहा – आपको जिसमें अधिकसे अधिक सुख हो, आप वही करें। आपके सुखमें ही मुझे सुख है।

बाबूजीने २० मार्चके प्रातःकाल अपने 'जानेका' संकेत बाबाको दे दिया था और अपने 'जाने' के लिये अनुमति भी ले ली थी।

अब २२ मार्चके प्रातःकालकी बात है। बाबाने मन-ही-मन उनसे कहा – देखिये, मैं परिक्रमा करने जा रहा हूँ। यदि आपको यही अभीष्ट हो कि मेरी अनुपस्थितिमें आप जायें तो चले जाइयेगा।

यह कहकर बाबा जल्दीसे कुटियापर आये और शौचसे निवृत्त हुए। फिर बिना स्नान किये ही बाबा तुरन्त श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करने लगे। जल्दी-जल्दी परिक्रमा पूरी करके बाबा तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर परिवारके लोग बैठे थे। बाबाने दरवाजेपर बड़ी हल्की थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। तब बाबाने फिर उनसे मन-ही-मन कहा – देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करने जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियापर आये। जल्दीसे स्नान करके

तुरन्त बाबूजीके कमरेमें गये। बाबा बाबूजीके सिरहाने बैठ गये। बैठनेके पाँच-छः मिनट बाद ही उनको रक्तका वमन हुआ। फिर चेहरेकी आकृति और श्वासकी गति ऐसी लगने लगी मानो वे अब जानेवाले हैं। बाबा तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले – जल्दीसे नीचे उतारो।

बिस्तरका छोर पकड़कर बिस्तर सहित बाबूजीको उठाया गया और उन्हें नीचे उतार लिया गया। उतारते ही ७ बजकर ५५ मिनटपर उन्होंने 'प्रस्थान' कर दिया।

हजारोंकी संख्यामें जन समूह गीतावाटिकामें एकत्रित था। सबके नेत्र बरस रहे थे। स्नानादि विविध कृत्योंकी सम्पन्नताके उपरान्त पार्थिव देहको अर्थीपर विराजित किया गया और अन्त्येष्टि-क्रिया गीतावाटिकाके गिरिराज परिसरमें पूर्ण हुई।

* * * * *

गीतावाटिका में समाधि

एक बार बाबासे बड़ी ही भावभरी रसमयी चर्चा चल रही थी। चर्चा करते-करते और अपने भावोंको सुनाते-सुनाते बाबा बहुत अधिक भाव-विह्वल हो रहे थे। गीतावाटिकामें जहाँ समाधि है, वहीं बाबूजीका अन्तिम अग्नि-संस्कार हुआ था। गीतावाटिकामें चिता-निर्माणकी कथा भावराज्यकी एक रसमयी और रहस्यमयी गाथा है।

११ मई १९३९ को बाबाने बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प लिया था तो उसी संकल्पका यह भी एक उप-संकल्प था कि यदि बाबाके पहले उनका शरीर चला गया तो जहाँ उनकी चिता सजेगी, वहीं बाबा रहेंगे। यदि गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे राजघाटपर चिता सजती तो बाबा वहीं रहते, पर श्रद्धालुओंको यह स्वीकार ही नहीं था कि श्रद्धेय बाबा उस मरघटके बीरानेमें भीषण प्रतिकूल परिस्थितियोंसे संघर्ष करते हुए अपने शेष जीवनको व्यतीत करें। फिर प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय। लोगोंने सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण निकेतनमें रहनेकी सुविधा है, अतः श्रीकृष्ण निकेतनमें चिता सजायी जाय। यह बात ठीक थी, पर श्रीकृष्ण निकेतन तो था बाई (श्रीसावित्री बाई फोगला)का, जो है बाबूजीकी सुपुत्री। बेटीकी जमीनपर पिताका शव-दाह नहीं हो सकता। इस बाधाका निवारण

करनेके लिये यह सोचा गया कि बाई अपना श्रीकृष्ण निकेतन श्रीराधामाधव संस्थानको दान कर दे और फिर श्रीकृष्ण-निकेतनकी भूमिपर अग्नि-संस्कार करनेमें कोई आपत्ति नहीं रहेगी। बाई एवं जीजाजी, दोनों तत्काल दान कर देनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उसी क्षण चाचाजी श्रीजयदयालजी डालमियाके मनमें एक विचार अचानक कौंध गया कि यदि चिता राजघाटके मरघटपर न होकर श्रीकृष्ण निकेतनमें सजायी जा सकती है तो फिर उसका सजाना गीतावाटिकामें ही क्यों न हो? उनके मनमें उभरा हुआ यह विचार क्रमशः प्रबल होता चला गया। उन्होंने अपना विचार बाबाके सामने रखकर पूछा – यहाँ गीतावाटिकामें चिता सजानेमें आपको कोई आपत्ति है क्या?

बाबाने कहा – गीतावाटिका गीताप्रेसकी है। इस सम्बन्धमें मैं अपना कोई अभिमत नहीं दे सकता।

फिर श्रीडालमियाजीने गीताप्रेसके ट्रस्टियोंसे बात की। वे लोग वहाँ गीतावाटिकामें उपस्थित थे। उनकी सहमति मिलते ही फिर सरकारसे भी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रयास होने लगा। सरकारसे भी आज्ञा मिल गयी। फिर प्रश्न उठा कि चिता गीतावाटिकामें कहाँ सजायी जाय। कोई कहीं और कोई कहीं बता रहा था। अन्तमें तय हुआ कि चिता बाबाकी कुटियाके द्वारपर ही सजायी जाय और वैसा ही हुआ। बहुत लोगोंके मध्य बहुत अधिक चिन्तन-मन्थन होनेके उपरान्त यही तथ्य उभरकर इतिहासका एक प्रसंग बन गया कि बाबूजीका अन्तिम अग्निसंस्कार गीतावाटिकामें बाबाकी कुटियाके सामने हुआ। कुटियाके द्वारपर जो चिता सजायी गयी, इसे देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

इसके बारेमें बाबाने भावभरे उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था – श्रीपोद्दार महाराजकी चिता सजी गीतावाटिकामें मेरी कुटियाके एकदम सामने, एकदम समीप और गिरिराज परिसरमें। जगत इसे एक मात्र संयोग कह सकता है, पर जगतके लोग जान नहीं सकते और जानकर भी विश्वास नहीं कर सकते कि भावराज्यकी भावमयी प्रक्रियाएँ कैसी अनोखी होती हैं और उन प्रक्रियाओंका प्रतिफलन कैसा अद्‌भुत होता है? गीतावाटिकामें चिताका सजना भावराज्यकी अति सुगुप्त एवं अति समर्थ प्रक्रियाओंका एक अति सबल प्रमाण है और आस्थावानके लिये एक अति अद्‌भुत उदाहरण है। यह रहस्यमयी प्रक्रिया जगतके लोगोंके लिये अगम्य

ही रहेगी। श्रीपोद्दार महाराजका सम्पूर्ण जीवन तत्सुख-सुखी-भावका मूर्तिमान स्वरूप था। वे कहा करते थे – 'एक तुम्हारे मनकी हो, बस, स्वार्थ यही परमार्थ यही'। श्रीपोद्दार महाराजने महाप्रस्थानके उपरान्त मन-ही-मन यही सोचा और यही कहा कि बाबा! क्यों आप मेरे लिये कष्ट उठायें और क्यों आप राजघाटके मरघटपर जायें। आपको कहीं जानेकी जरूरत नहीं है। मैं ही आपके पास आ जाता हूँ। ऐसा निश्चय करके श्रीपोद्दार महाराजने सबसे पहले इस विचारको स्फुरित किया अपने अत्यन्त अभिन्न जन श्रीडालमियाजीके मनमें, जिनका विचार सभीके लिये आदरणीय होता था। फिर लोगोंके मध्य विचारोंका मन्थन और सुझावोंका प्रवाह ऐसा चला कि सर्वान्तमें होनेवाले निर्णयके अनुसार चिता मेरी कुटियाके सामने श्रीगिरिराज परिसरमें सजायी गयी। इन सारे विचारोंको और सुझावोंको परोक्ष रूपसे प्रेरित और नियन्त्रित करते हुए श्रीपोद्दार महाराजने घटनाओंका संचालन-सूत्र अपने हाथमें ले रखा था।

एक बात और है। मेरा निश्चय था कि मुझे आजीवन श्रीगिरिराजकी तरहटीमें रहना है। अतः श्रीपोद्दार महाराजने गीतावाटिकामें कहीं अन्यत्र चिता सजने ही नहीं दी। उनका सशक्त संचालन-सूत्र इतना प्रभावशाली था कि उनकी परोक्ष प्रेरणासे लोगोंने यही निर्णय लिया कि गिरिराज परिसरमें चिता सजायी जाय और इस निर्णयसे मेरे नियमके निर्वाहका सुन्दर ढंग बन गया। मैं न तो अपना विचार प्रकट कर रहा था और न किसीके चिन्तनका समर्थन अथवा प्रतिवाद कर रहा था। बस, घटनाके प्रवाहको देख-देख करके विस्मयमें डूब रहा था और रह-रह करके श्रीपोद्दार महाराजके तत्सुख-सुखी-भावकी और उनकी सुगुप्त-सशक्त प्रक्रियाकी मन-ही-मन जय-जयकार बोल रहा था।

इसी प्रसंगको देखनेका एक पक्ष और है। श्रीपोद्दार महाराजको सदा यही प्रिय था कि उनके द्वारा जो कार्य हो, वह सुगुप्त रूपसे हो। इस चिताको यहाँ सजवानेका कार्य भी उन्होंने सम्पन्न किया, पर आदिसे अन्ततक स्वयंको सर्वथा-सर्वथा छिपाये रखकर, सर्वांशमें स्वयंको अव्यक्त रखकर। श्रीपोद्दार महाराजकी इस संगोपन-प्रियताकी और तत्सुख-सुखी-भावकी बार-बार बलिहारी।

* * * * *

पूजा-पाठ का विसर्जन

पूर्व पृष्ठोंमें यह बतलाया जा चुका है और प्रसंगानुरोधसे पुनः लिखना पड़ रहा है कि २२ मार्चके प्रातःकाल बाबूजीकी स्थिति अति गम्भीर थी। बाबूजीके कमरेसे बाबा अपनी कुटियापर आये और श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको शीघ्रतासे करके तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर कुछ लोग बैठे हुए थे। उन लोगोंने किसी विशेष उद्देश्यसे कमरेका दरवाजा बन्द कर रखा था। बाबाने दरवाजेपर बहुत हल्की रीतिसे एक-दो थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। फिर बाबाने उनसे मन-ही-मन कहा— देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इस प्रकार निवेदन करके बाबा अपनी कुटियाकी ओर जाने लगे। कमरेके द्वारसे चले आनेके बाद सीढ़ियोंपर उतरते समय उन्होंने श्रीठाकुरजी (श्रीघनश्यामदासजी ठाकुर) को अपने साथ ले लिया, जो वहींपर खड़े हुए थे। उनको साथ लेकर बाबा अपनी कुटियापर आये और कुटियाके बाहर उनको खड़ा करके कहा— तुम यहीं रहो, मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियाके भीतर गये और पूजावाली चौकीपर बैठ गये। बाहर खड़े हुए श्रीठाकुरजी बाबाकी हर चेष्टाको एकटक देख रहे थे। खिड़कीसे सारा दिखलायी दे रहा था। ठाकुरजीने देखा कि बाबाने अपने दोनों कर-पल्लव इस ढंगसे जोड़ लिये हैं मानो अञ्जलिमें पुष्प हों और फिर उन्होंने ऐसी चेष्टा की कि मानो पुष्पार्पण कर रहे हों। फिर बाबाने जल्दीसे स्नान किया और वस्त्र धारण करके बाबूजीके पास चले आये। बाबाके पहुँचनेके कुछ मिनट बाद ही बाबूजी नित्य लीलामें सदाके लिये लीन हो गये।

बाबूजीके महाप्रस्थान करते ही सभी करुणार्द्र हो उठे। वातावरणमें गम्भीर रूपसे शोक परिव्याप्त हो गया। थोड़ी देर बाद बाबा वहाँसे श्रीगिरिराजजीके पास आये और उनके समक्ष खड़े हो गये। बाबा पुनः कर-पल्लवको जोड़कर ऐसा करने लगे मानो श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें पुष्पार्पण कर रहे हों।

अपनी कुटियामें और फिर श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें बाबाने जो पुष्पाञ्जलि समर्पित की, उस समय तो कोई आभास भी नहीं लगा पाया कि उनके द्वारा क्या हो रहा है, पर बादमें ज्ञात हुआ कि इस प्रक्रियाके द्वारा उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पूजा और सभी पाठका विसर्जन कर दिया है।

छलछलाये हुए नेत्रोंसे बाबा कहा करते थे– अब मैं पूर्णतः खाली हो गया हूँ। श्रीपोद्दार महाराजके जाते ही मेरे पास एक मात्र रिक्तता ही रह गयी है।

उन दिनों ऐसा कई बार देखनेमें आया कि नेत्रोंकी सजलतासे भीगे हुए शब्दोंमें ये भावोद्‌गार जब-जब बाबाके श्रीमुखसे सुननेको मिलते थे, तब-तब उनका अन्तर आकुलताका आगार बन जाया करता था।

* * * * *

प्रीति की वेदी पर

बाबूजीके नित्य-लीलामें लीन होनेके बादसे बाबाने अपनी उस पुरानी कुटियाका सर्वथा परित्याग कर दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब उस कुटियाकी चार दिवालके भीतर नहीं रहना है। अब शीत-वर्षासे कुछ बचाव हो सके, एतदर्थ एक छोटा-सा टिन शेड गीतावाटिकाकी उत्तरी चहारदिवारीके पास बनवा दिया गया। यह टिन शेड उत्तर-पूर्व-दक्षिण, इन तीन दिशाओंकी ओरसे सर्वथा खुला हुआ था। केवल पश्चिमकी ओर साधारण स्तरकी एक छोटी दिवाल थी। टिन शेडके दक्षिणकी ओर ठीक सामने बाबूजीकी चिता-स्थली थी। टिन शेडके नीचे बैठे रहनेसे चिता-समाधिका दर्शन सहज ही होता रहता था।

मैं जो कहना चाहता हूँ, उसको लिखनेके पूर्व एक अन्य प्रसंगका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। जब मैं कालेजमें पढ़ता था, तब मैंने किसी मासिक पत्रिकामें एक कहानी पढ़ी थी। वह कहानी पूर्ण रूपसे याद नहीं है, परन्तु उसका कथानक संक्षेपमें इस प्रकार है। एक प्रेमी युगल था। प्रेमी-प्रेमिकाका परस्परमें बड़ा प्यार था। प्यार इतना अधिक था कि कुछ समयके लिये एकसे दूसरेका अलगाव भी असह्य लगने लगता था। दुर्भाग्यसे प्रेमिकाका निधन हो गया। प्रेमिकाके शोकमें डूबे हुए प्रेमीके आँसू

सूखते ही नहीं थे। उस प्रेमिकाने अपने प्रेमीको एक बार आम खिलाया था। खिलानेके बाद उस प्रेमिकाने आमकी गुठलीको बगीचेमें बो दिया था। उस गुठलीसे एक आमका पौधा उग आया और धीरे-धीरे बहुत बड़ा हो गया। अब प्रेमिकाके निधनके बाद प्रेमकी पीरसे पीड़ित वह विरही प्रेमी अपने नयनोंके नीरसे उस वृक्षको सींचता रहा और उसने अपनी सारी जिन्दगी उस आमके पेड़के नीचे बिता दी। उसने उसकी छायामें अपना जीवन बिता दिया, इसीलिये कि इस पेड़के बीजको उसकी प्रेमिकाने बोया था और आमका वह पेड़ उस प्रेमिकाकी याद दिलाता रहता था।

यह कहानीका स्थूल कथानक है। इस कहानीको पत्रिकाके पाठकोंके लिये मनोरञ्जनार्थ लिखा गया था। यह कहानी पूर्णतः कल्पना-प्रसूत है और सर्वथा लौकिक है। अब थोड़ी देरके लिये विचारकी धाराको दूसरी दिशा दे दीजिये और चिन्तनके स्वरूपमें किञ्चित् निखार लाइये। इस कहानीके कथानकमें जो काल्पनिकता और लौकिकता है, एक बार उसकी उपेक्षा कर दीजिये। कहानीमें मनोरञ्जनात्मकता, काल्पनिकता और लौकिकताका जो अंश है, यदि उस धरातलसे ऊपर उठकर तनिक विवेचन किया जाय तो यह बात स्पष्ट रूपसे दिखलायी देती है कि इस कथानकके माध्यमसे प्रेमराज्यके एक महान आदर्शका चित्रण हुआ है। मुक्त स्वरसे स्वीकार करना पड़ता है कि उस प्रेमीने प्रेमकी टेकका निर्वाह किया है। मेरी दृष्टि इसी प्रेमादर्शपर है। कहानीमें उस प्रेमादर्शका वर्णन भले वह लोकरञ्जनार्थ हुआ हो, पर वह प्रेमादर्श है प्रेमराज्यका एक महान सत्य।

कहानीके इस महान मर्मको समझ लेनेके बाद गीतावाटिकाके उस महान मार्मिक सत्यको सहज रूपसे हृदयंगम किया जा सकता है, जो इस वाटिकाकी महान भावात्मक निधि है। इस कहानीमें जिस प्रेमादर्शका वर्णन हुआ है, वह गीतावाटिकाका एक यथार्थ सत्य है। वह ऐसा गौरवशाली सत्य है, जिसमें काल्पनिकता और लौकिकता है ही नहीं, उसका कणांश भी नहीं है, अपितु काल्पनिकता-लौकिकता-शून्य उस प्रीति-प्रसंगमें एकमात्र आध्यात्मिकता है। प्रेमकी इस टेकके निर्वाहमें आरम्भसे अन्ततक आध्यात्मिकता-ही-आध्यात्मिकता है। गीतावाटिकाकी यह विशिष्ट घटना प्रीतिकी रीतिका एक सदैव स्मरणीय एवं वन्दनीय प्रसंग है और इस घटनाको एक वाक्यमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर अपना सारा जीवन बिता दिया और बिता दिया

भीगे नेत्रोंसे उस चिताको निहारते हुए। बाबा अपनी अन्तिम साँसतक उस चिता-स्थलीपर ही रहे।

* * * * *

अधिकारकी सार्थकता

बाबा अपनी कुटियाके समीप पनियालेके वृक्षके नीचे बैठे हुए समागत लोगोंसे भगवच्चर्चा कर रहे थे। वृक्षपर पनियालेके फल पके हुए थे। संयोग ऐसा बना कि पनियालेके वृक्षसे टपककर दो फल सहज ही उनके हाथमें आ गये। लोगोंके मध्य बैठा हुआ तीन-चार वर्षका एक बालक बाबाके हाथमें रखे उन फलोंको ललचायी दृष्टिसे देखने लगा। पूज्य बाबा उस बच्चेके मनोभावोंको सहज समझ गये। उन्होंने श्रीजगदीशप्रसादजी शर्माको कहा — जरा दौड़कर जावो और माँजीसे (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सहधर्मिणीसे) पूछकर आवो कि बाबा पनियालेके दो फल एक बच्चेको देना चाहते हैं, उनकी अनुमति हो तो वे दे दें।

वे दौड़कर गये। वात्सल्यमयी माँजी भला अनुमति कैसे नहीं देती! उन्होंने बहुत ही स्नेहसे कहा — बाबो तो खेल कर ह, बई तो मालिक है (बाबा तो खेल करते हैं, वे ही तो मालिक हैं)।

श्रीजगदीशजीने लौटकर बाबाको बताया — पूजनीया माँजीने अनुमति दे दी है।

अब बाबाने बहुत ही स्नेहसे वे फल उस बालकको दे दिये।

थोड़ी देर बाद वहाँ उपस्थित सभी लोग विदा हो गये। श्रीजगदीशजीने सहज जिज्ञासावशात् बाबासे पूछा — बाबा! आप तो जानते हैं कि इतनी छोटी-सी चीजकी तो बात ही क्या, बड़ी-से-बड़ी चीजके लिये भी आपको कोई मना नहीं करता। इतना ही नहीं, यदि किसीसे कुछ आप कह देते हैं तो वह निहाल हो जाता है और अपना सौभाग्य समझता है। फिर भी आपने उस बच्चेको पनियालेके दो फलोंके लिये, भले दो मिनटके लिये ही सही, प्रतीक्षा करवायी।

बाबा गम्भीर हो गये और बोले — भैया! मैं इसे छोटी-सी बात नहीं मानता। इतने वर्षोंसे मैं यहाँ हूँ, मैं यहाँके सूखे पत्तोंपर भी अपना अधिकार नहीं मानता। जबतक गीतावाटिका गीताप्रेसकी सम्पत्ति थी,

तबतक वहाँके अधिकारियोंसे और अब, जब गीतावाटिका 'समिति' की सम्पत्ति हो गयी है, पूजनीया माँजी (हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिकी तत्कालीन अध्यक्षा) की बिना पूर्वानुमतिके मैंने किसी वस्तुका प्रयोग नहीं किया है।

श्रीजगदीशजीकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई, पर वे चुप बैठे रहे। तभी बाबा स्वयं बोल पड़े – देखो, संन्यासी समाजके नियमोंके नियामक होते हैं। इस गैरिक वस्त्रकी अपनी कुछ मर्यादाएँ हैं। आज मैं इन फलोंपर अपना अधिकार मानूँगा तो तुम्हारे लिये इस वृक्षपर अधिकार माननेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। मेरी भावनाओंकी यह पवित्रता इस गैरिक परिवेशमें रहनेवाले साधुओं- साधकोंके लिये आवश्यक 'अधिकार-शून्यता' वाले भावको अवश्य बल देगी।

फिर बाबाने एक कथा सुनाई – दो स्मृतिकार भाई-भाई थे। एकने दूसरेकी अनुमति लिये बिना ही दूसरेके बागसे भगवानको अर्पित करनेके लिये कुछ पुष्प ले लिये। पुष्प तो चुन लिये, पर तुरन्त यह बात मनमें आयी कि यह तो चोरी है। वे राजाके पास गये और उन्होंने राजासे अपने हाथको कटवा देनेका दण्ड विधान माँगा। हाथको काट देनेकी राजाज्ञा हो गयी और वह काट भी दिया गया। सायंकाल वे गंगाके तटपर संध्या करने बैठे। उस समय गंगा माँकी कृपासे संध्या करते समय पुनः उनके हाथ पूर्ववत् हो गये।

यह कथा सुनाकर बाबा बड़े ही स्नेहसे श्रीजगदीशजीके कंधेपर हाथ रखकर कहने लगे – पूर्वाश्रमके स्वजनोंपर एवं वहाँकी घर-सम्पत्तिपर अधिकार छोड़कर इस वाटिकाके पत्तों और फलोंपर अधिकार जमाना तो घाटेका सौदा है रे! अधिकारकी सार्थकता तो साक्षात नन्द-नन्दनपर अधिकार माननेसे होती है। यदि मेरा कहीं अधिकार है तो एक मात्र उन्हींपर।

* * * * *

लिखित अक्षरों का समादर

बाबूजीके महाप्रस्थानके बाद उनकी आलमारीमें कुछ ऐसे कागज मिले, जिसमें सांकेतिक रूपसे यह लिखा था कि किससे कितना धन कब मिला और वह धन कहाँ दिया गया? बाबाको यह सब दिखलाया गया। देखते ही बाबाने कहा – सेवा-सहायता सम्बन्धी विवरण जिन-जिन कागजोंमें हैं, उनको सर्वथा नहीं रखना चाहिये।

यह विवरण था ही ऐसा कि वस्तुतः कई कारणोंसे इनको रखना पूर्णतः उचित नहीं था। तब बाबासे पूछा गया – क्या इन कागजोंको जलाकर अथवा फाड़कर नष्ट कर दिया जाये?

जलाने अथवा फाड़नेकी बात बाबाको बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। बाबाने उन सब कागजोंको अपने पास मँगवा लिया। इन कागजोंके अक्षर एक महासिद्ध संतकी अँगुलियोंसे लिखे गये थे। महासिद्ध संत और प्राणोंसे भी बढ़कर परमात्मीय, उन श्रीपोद्दार महाराजकी लेखनीसे लिखे गये अक्षरोंका रंच मात्र भी अनादर हो, यह भला कैसे सम्भव था! अनादरका तो प्रश्न ही नहीं, परम समादर हो, एतदर्थ बाबाने उन कागजोंके सभी अक्षरोंको गंगाजलसे धो-धोकर साफ किया। उस घुले हुए काजल-सम जलको बाबा अपने मस्तकपर लगाते जाते थे। जब सारे अक्षर गंगाजलसे धोकर मिटा दिये गये, तब उन कागजोंकी लुगदी (अर्थात् सने हुए आटेके समान) बनाकर उस लुगदीको अपनी कुटियाके पास एक बहुत गहरे गड्ढेमें गड़वा दिया। बाबूजीके प्रति परम आत्मीयता और परम श्रद्धाका यह अनोखा उदाहरण है। इस श्रद्धा-प्रेरित प्रीति-पूर्ण कार्यके लिये बाबाने पाइपका स्वच्छ जल अथवा कुएँका शुद्ध जल नहीं, गंगाजीका पवित्र जल प्रयोगमें लिया।

* * * * *

कलाईमें चोट

सन् १९७१ के अगस्त मासकी बात है। सूर्यास्त होनेवाला था। लगभग छः बजे बाबा पैरके फिसल जानेसे गिर पड़े। उनके बायें हाथकी कलाईमें गहरी चोट आयी। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा श्रीरामसनेहीजी घरमें

ही पानी से जमायी हुई बर्फ ले आये। वह बर्फ एक बहुत बड़े टोपियेमें डाल दी गयी। बाबा उस बर्फ भरे टोपियेमें अपना हाथ डालकर बैठ गये।

पूज्या माँको जब बाबाके चोट लगनेकी सूचना मिली तो वे बहुत अधीर हो उठीं। वे तुरन्त बाबाको देखने पहुँच गयीं। उनको पूर्ण सम्मान देते हुए बाबाने उनसे कहा – मैया! जितनी चोट लगनी चाहिये थी, उसका बीसवाँ अंश भी नहीं लगा। आजसे चार दिन पूर्व मेरे सामने एक दृश्य उपस्थित किया गया था। उसमें मेरे दोनों हाथोंकी कलाइयोंमें कपड़ेकी पट्टी बँधी हुई थी। मैं तो इसके लिये तैयार बैठा था। मैया! कितना ही कष्ट क्यों न हो और कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, मेरे मनमें यह भाव उदय ही नहीं होता कि यह कष्ट क्यों आया और उसका परिवर्तन होना चाहिये। मेरे मनमें यह चाह ही नहीं होती कि इसका शमन होना चाहिये। मैया! तुम्हारी कृपासे श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यकी सत्ताका भान ही अब नहीं होता। जब सर्वत्र सब कुछ वे-ही-वे हैं, तब दर्द कहाँसे आवे। यह बात मैं कहना नहीं चाहता था, किन्तु तुम्हारे प्यारने मुझसे बुलवा लिया।

इस भीषण कष्टमें भी बाबाके इन उद्गारोंको सुनकर और उनके मुख-मण्डलको प्रसन्न देखकर पूज्या माँकी दोनों आँखोंमें आश्चर्य भरा हुआ था।

* * * * *

कथन सहैतुक था

सन् १९७१ ई.को गीतावाटिकाके लिये अशुभ वर्ष कहा जाय तो सम्भवतः अत्युक्ति नहीं होगी। इस वर्ष चैत्र मासमें बाबूजीने अपनी इह-लीलाका संवरण किया और इसी वर्ष आश्विन मासमें बाबाके पैरकी हड्डी टूट गयी थी। हड्डीके टूटनेके बाद भी बाबाने श्रीगिरिराज-परिक्रमा स्थगित नहीं की। वे अपने नियम-पालनमें बड़े कट्टर थे। उनका निश्चय था कि किसी भी दशामें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनी ही है। बाबा अपने नियम-पालनमें अत्यधिक तत्पर थे, परन्तु पैरकी हड्डी टूट जानेके कारण परिक्रमा कर सकना बड़ा कठिन पड़ रहा था। परिक्रमा करते समय एक सहायककी आवश्यकता थी। एतदर्थ वृन्दावनसे श्रीठाकुरजी (सम्मान्य

श्रीघनश्यामदासजी शर्मा) को बुला लिया गया।

श्रीठाकुरजीके आ जानेसे बाबाको बड़ा सहारा मिला। उनका सहारा मिलनेसे परिक्रमाके नियम-निर्वाहमें पर्याप्त सुविधा मिली। ज्यों-ज्यों पैरकी हड्डी जुड़ने लगी, त्यों-त्यों कठिनाई कम होने लगी। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी हो गयी थी कि अब बाबा बिना सहाराके भी परिक्रमा कर सकते थे। २९ सितम्बर १९७१ के दिन मातृ-नौमी थी। इस दिन सबेरे बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा – अब पैरकी स्थिति ऐसी हो गयी है कि मैं अकेले परिक्रमा कर ले सकता हूँ। आजके बादसे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी।

बाबाके अधरोंसे निकले हुए इन शब्दोंको सुनकर श्रीठाकुरजी थोड़ा चिन्तित हुए और वे सोचने लगे – क्या मेरी सेवा छूट जायेगी? क्या बाबाकी सेवासे वंचित होना पड़ेगा?

श्रीठाकुरजीके मनमें उथल-पुथल ज्यादा थी, परन्तु उनके मनमें एक समाधान भी था – मैं बाबाको मना लूँगा। कम-से-कम आज तो परिक्रमामें बाबाके साथ रहूँगा ही। कलकी बात कल देखी जायेगी।

सबेरे बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाते समय श्रीठाकुरजीको अपने साथ रखा। परिक्रमाके पूर्ण होनेके थोड़ी देर बाद ही श्रीठाकुरजीके लिये अलीगढ़से बड़े भाई श्रीश्रीरामजी शर्माका फोन आ गया – माँकी स्थिति नाजुक है और पता नहीं, कब 'विदा' हो जाय। तुरन्त तुम वापस चले आवो।

बाबाको ज्यों ही यह समाचार मिला कि उन्होंने श्रीठाकुरजीके घर वापस जानेकी व्यवस्था तत्काल कर दी। गीतावाटिकासे प्रस्थान करते समय श्रीठाकुरजीने बतलाया – ज्यों ही सबेरे बाबाने कहा कि अब परिक्रमामें तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी, तभी मेरा माथा ठनक गया था। उस समय मुझे भला क्या पता था कि वस्तुतः किसी एक विशेष हेतुसे यह सेवा बन्द होनी ही है। बाबाने जो कहा था, वह घटित हो ही गया। इतना तो सत्य है ही कि भले हमें जानकारी नहीं हो, परन्तु बाबाके कथन सहैतुक हुआ करते हैं।

* * * * *

कैंसर अस्पताल

बाबूजीको अपने लिये कुछ भी अपेक्षित नहीं था, अतः उनको अपने लिये किसी स्मारककी अपेक्षा क्यों हो, परन्तु हमें अपेक्षा थी कि उनकी पावन स्मृतिका कोई केन्द्र-बिन्दु हमारे सामने सतत रहे, जिससे हम अपनी श्रद्धाके सुमन उनके प्रति समर्पित कर सकें। इस दृष्टिकोणको सामने रखकर विनीत भावसे सन् १९७४ ई. में हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिका गठन हुआ। बाबूजीका पार्थिव शरीर कैंसर रोगसे ग्रस्त होकर ही पञ्च तत्त्वमें विलीन हुआ था, अतः बाबाकी प्रेरणासे प्रेरित होकर हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिने वसंत पंचमी (१६ फरवरी १९७५) को बाबूजीकी पुनीत स्मृतिमें एक विराट कैंसर अस्पतालके निर्माणका संकल्प किया।

इस निर्णयको सभी दिशाओंसे समर्थन और सहयोग मिला। उत्तर प्रदेशके पूर्वाञ्चलकी जनता आर्थिक दृष्टिसे विपन्न है और कैंसर जैसे सर्वाधिक व्ययसाध्य रोगकी चिकित्सा अभाव-ग्रस्त रोगियोंको भी सुलभ हो सके, इस भावसे भावित होकर नगरके प्रमुख चिकित्सकोंने, प्रशासनिक पदाधिकारियोंने, गोरखपुर विश्वविद्यालयके विद्वान प्राध्यापकोंने, समाजके जन-सेवा-व्रती महज्जनोंने और भारतके धनपतियोंने मुक्त मनसे सहयोग दिया। सन् १९८३ ई. में व्यासनन्दन श्रीशुकदेव स्वरूप पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने कैंसर अस्पतालके सहायतार्थ श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा मुम्बई शहरमें कही थी।

इसीका परिणाम है कि गोरखपुर नगरका हनुमानप्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल आज भारतका एक प्रमुख चिकित्सालय है। इस कैंसर अस्पतालके निदान-विभाग, विकिरण चिकित्सा विभाग, शल्य चिकित्सा विभाग, एक्स-रे विभाग आदि मुख्य अंग हैं।

* * * * *

सरकारी धनकी वापसी

श्रीधर्मेन्द्र मोहनजी सिन्हा, आई.ए.एस, उस समय उत्तर प्रदेश सरकारके नियुक्ति-विभागके आयुक्त एवं सचिव थे। उत्तर प्रदेश सरकारकी ओरसे विभिन्न स्थानोंपर दौरा करनेके लिये उनको कार मिली हुई थी। वे किसी सरकारी दौरेपर गोरखपुर आये थे। समय मिलनेपर वे अपनी सरकारी कारसे बाबाका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका पधारे। जैसे ही वे कुटियापर पहुँचे, भीषण वर्षा एवं अन्धड़ शुरू हो गया। बाबा उस समय एक भक्तके स्वास्थ्यके बारेमें जाननेके लिये उत्सुक थे। वे भक्त काफी अस्वस्थ थे। बाबाने श्रीजगदीशजीको निर्देश दिया – तुम जाकर उस भक्तके स्वास्थ्यके समाचारकी जानकारी प्राप्त करो और फिर सोनेसे पहले मुझे सूचित करो।

बाबाने आदेश तो दे दिया, पर प्रश्न यह था कि श्रीजगदीशजी जायें कैसे? मौसम एकदम खराब हो चुका था। इस उलझनको सुनकर श्रीसिन्हा साहबने निवेदन किया – मैं कारसे आया हूँ। मैं डाक बँगले पहुँचकर कार श्रीजगदीशजीको दे दूँगा। श्रीजगदीशजी उस भक्तके घर जाकर उनके स्वास्थ्यकी जानकारी प्राप्त कर लेंगे।

बाबाने यह निवेदन सहज स्वीकार कर लिया। जब श्रीजगदीशजी लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि बाबाका मुख म्लान है। उस भक्तके सारे समाचार जाननेके बाद बाबा कहने लगे – आज असावधानीसे एक अपराध घटित हो गया। श्रीसिन्हा साहबके प्रति मेरे मनमें आदर है। उनके निवेदनको मैंने स्वीकार कर लिया और इसके फलस्वरूप मेरे द्वारा सरकारी वाहनके दुरुपयोगका अपराध घटित हो गया। सरकारी वाहनको निजी कार्यमें प्रयोग करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। अब समस्या यह है कि इस अपराधका मार्जन कैसे हो?

समस्याका हल ढूढनेके लिये पंचायत जुटायी गयी। वाटिकाके कई प्रमुख व्यक्ति बाबाके सामने बैठे हुए थे। सभी अपना-अपना सुझाव दे रहे थे। सभीके बीच पंचायतमें बैठे हुए श्रीलखपतरायजीने पंचके रूपमें एक उपाय बताया – यदि सरकारी स्टाम्प खरीदकर उसे बिना उपयोग किये नष्ट कर दिया जाय तो यह धन उत्तर प्रदेश सरकारके खजानेमें वापस

चला जायेगा।

बाबाको यह सुझाव मान्य हो गया। पैसेका स्पर्श न करनेवाले बाबाने भिक्षा माँगकर धन इकट्ठा करना आरम्भ किया। भक्तका हाल-चाल जाननेके लिये उपयोगमें ले ली गयी कारमें जितने रुपयोंका पेट्रोल लगा, उससे चार गुना अधिक मूल्यकी धनराशि एकत्रित की गयी तथा रैवेन्यू स्टाम्प खरीदकर उन धनराशिको वापस उत्तर प्रदेश सरकारको लौटा दिया गया। वे खरीदे गये स्टाम्प तो नष्ट कर ही दिये गये।

* * * * *

पाँच पदों का गायन

दिनांक २५ जनवरी १९७५ के दिन अपराह्न कालकी बात है। बाबा टिन शेडके नीचे चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ठाकुरजी और कीर्तनिया हरिवल्लभजी भी थे। इसी समय रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी शर्मा बम्बईसे आये। वे बम्बईसे अपने साथ हारमोनियमकी नयी पेटी लाये थे। वे लाये थे बाबाके निर्देशानुसार और वह पेटी बाबा हरिवल्लभजीको भेंट स्वरूप प्रदान करनेवाले थे। गोरखपुर स्टेशनसे आकर श्रीरामजीने गीतावाटिकामें ज्यों ही प्रवेश किया, त्यों ही वे बाबाको प्रणाम करनेके लिये बाबाके पास सीधे चले आये। वे अपने साथ वह नयी पेटी भी लेते आये। इसे मात्र संयोग कहना चाहिये कि उस समय ठाकुरजी और हरिवल्लभजी बाबाके पास बैठे हुए थे। नयी पेटीको देखकर बाबाने उसी समय अपने सामने ही उसको देखना-जाँचना और उसका परीक्षण करवाना चाहा।

बाबाके संकेतके अनुसार श्रीरामजीने हारमोनियमकी वह नयी पेटी बक्सेसे बाहर निकाली। पेटीको देखकर बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर श्रीश्रीरामजीने बाबाको प्रिय लगनेवाले पाँच पद गाकर सुनाये। वे पद थे –

(१)

राधिका आज आनंद में डोले!
साँवरे चंद गोविंद के रस भरी,
दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलै।।
पहिर तन नील पट कनक हारावली,

हाथ लै आरसी रूप को तोलै।।
कहत श्रीभट्ट ब्रजनारि नागरि बनी,
कृष्ण के सील की ग्रंथिका खोलै।।

(२)

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज-जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील सिंगार गुन सबन ते आगरी।।
कमल दक्षिण भुजा बाम भुज अंस सखि,
गावति सरस मिलि मधुर स्वर राग री।।
सकल विद्या विदित रहसि हरिवंस हित,
मिलत नव कुंज वर श्याम बड़ भाग री।।

(३)

भाग्यवान वृषभानु सुता सी को तिय त्रिभुवन माहीं।
जाको पति त्रिभुवन मन मोहन दिए रहत गलबाहीं।।
ह्वै अधीन सँग ही सँग डोलत जहाँ कुँवरि चलि जाहीं।
रसिक लख्यौ जो सुख वृंदाबन सो त्रिभुवन में नाहीं।।

(४)

बैठे हरि राधा संग कुंज भवन अपने रंग
कर मुरली अधर धरे सारँग मुख गाई।
मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान
जान बूझि एक तान चूक कै बजाई।।
प्यारी जब गह्यौ बीन सकल कला गुन प्रबीन
अति नवीन रूप सहित तान वह सुनाई।
बल्लभ गिरिधरन लाल रीझि दई अंक माल
कहत भले भले लाल सुंदर सुखदाई।।

(५)

आज इन दोउन पै बलि जैयै।
रोम रोम सों छबि बरसति है निरखत नैन सिरैयै।।
रूप रास मृदु हास ललित मुख उपमा देत लजैयै।
नारायण या गौर स्याम को हिये निकुंज बसैयै।।

इन पदोंको श्रीरामजीने बड़े भावपूर्ण ढंगसे गाया। गायनमें हरिवल्लभजी और ठाकुरजी आलापचारी करते हुए बीच-बीचमें सहयोग दे रहे थे। एक अनोखा समाँ बँध गया। वहाँका वातावरण कुछसे कुछ और ही हो गया। इन पदोंमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी हृदयस्पर्शी लीलाओंका सुन्दर वर्णन है। इन पाँच पदोंके गायनने बाबाके कोमल भावोंको स्पर्श कर लिया और वे पूर्णतः अन्तर्मुख हो गये। यह अन्तर्मुखता मध्य रात्रितक प्रशमित नहीं हो पायी। मध्य रात्रिके समय बाबाको भिक्षा बड़ी कठिनाईसे करवायी जा सकी।

अगले दिन २६ जनवरी १९७५ की बात है। प्रातःकालके समय बाबा स्नान करके अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ही श्रीरामजी, ठाकुरजी, हरिवल्लभजी आदि-आदि कई व्यक्ति बैठे हुए थे। कल अपराह्नकालके समय श्रीरामजी द्वारा जिन रसमय लीला-पदोंका गायन हुआ, उसकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा – शराबीको शराब पीनेकी आदत होती है। आदत होनेके कारण थोड़ी-थोड़ी शराब पीते रहनेके बाद भी शराबीका होश-हवास बना रहता है और उसका सांसारिक व्यवहार कुछ-कुछ ठीक प्रकारसे चलता रहता है, किन्तु जिस क्षण शराब अधिक ढल जाती है, तब उसके द्वारा सांसारिक व्यवहारका निर्वाह ठीक प्रकारसे नहीं हो पाता। शराबीका तो मैंने उदाहरण अपनी बातको समझानेके लिये कहा है। जब तुम लोग वृन्दावनसे यहाँ आते हो, तब व्रजभावके सुन्दर पद सुनाते हो। उससे भाव-विभोरता होती है और उस विभोरावस्थामें भी व्यवहार कुछ-कुछ निभता रहता है, किन्तु उन लीला-पदोंमें जब घने सरस और गहरे मार्मिक प्रसंग आते हैं, उस समय चित्तकी वृत्ति बाह्य जगतको छोड़ देती है। श्रीपोद्दार महाराजके महाप्रयाणके पहले मैं उस कुटियामें रहता था, जो उनकी समाधिके पास है। जब कभी ऐसी भावमयी स्थिति होती थी, तब उस स्थितिमें मैं अपनी कुटियाके भीतर पड़ा रहता था और उस गम्भीर स्थितिका शमन अपने-आप धीरे-धीरे सहज रीतिसे हो जाता था। जब उस गम्भीर भावमयी स्थितिसे उत्पन्न पागलपन बहुत अधिक बढ़ जाता था, तब मैं कुटियाके बाहर आकर खड़ा हो जाता था। खड़ा होता था इसलिये कि वृक्षोंको-लताओंको-पक्षियोंको अर्थात् बाह्य जगतके दृश्योंको देखकर किसी प्रकार इस भावमयी स्थितिका परिशमन हो। बात यह है कि वह दिव्य भावधारा है चिन्मय राज्यकी दिव्य वस्तु और यह देह है पाञ्चभौतिक जगतकी जड़ वस्तु। यह पाञ्चभौतिक देह उस चिन्मय भावकी धाराके वेगको सहन नहीं कर पाती।

जब-जब ऐसी दशा होती है, तब-तब सिरमें भयंकर पीड़ा होती है। उस पीड़ाकी आपलोग कल्पना नहीं कर सकते।

भाव-विभोरताकी बात कहते-कहते चर्चाका प्रवाह कुछ बदला और बाबा श्रीरामचरितमानसकी कथाके अनुभव सुनाने लगे। कथावाचकोंकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा – श्रीदीनजी नामक एक रामायणी थे, जो श्रीरामचरितमानसकी बड़ी सुन्दर कथा कहा करते थे। उनकी कथा इतनी भावपूर्ण होती थी कि कथा कहते-कहते स्वयं उनमें ही भावोदयकी ओर संकेत करनेवाले सात्त्विक विकार व्यक्त हो उठते थे। उनकी कथाको सुनकर मेरा मन जागतिक धरातलको छोड़ देता था। रामायणी श्रीदीनजीकी मानस-कथा सुनकर जैसा प्रभाव मुझपर पड़ता था, उससे भी अधिक गहरा प्रभाव श्रीकृपाशंकरजीकी मानस-कथा सुननेसे होता है। लोगोंकी मान्यताके अनुसार श्रीकृपाशंकरजी हैं तो साधारण स्तरके कथावाचक, परन्तु न जाने क्यों उनके मुखसे मानस-कथाको सुनकर मुझे बहुत अधिक भावोद्दीपन होता है और मन उस चिन्मय भावराज्यकी ओर भाग चलता है।

जब ऐसी अन्तर्मुखी भावमयी स्थिति हो, तब छूना-छेड़ना नहीं चाहिये। तब यदि किसी व्यक्तिकी ओरसे कुछ छेडछाड़की किञ्चित् भी क्रियाके द्वारा मुझे बहिर्मुखी बनाये जानेकी कोई चेष्टा होती है, अर्थात् कोई मुझसे मिलना चाहता है अथवा कुछ कहना चाहता है तो उस समय मनकी धाराको बलात् मोड़नेके कारण शरीरपर बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होती है। जिस तरह पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाको देखकर सागर उद्वेलित हो उठता है, इसी प्रकार पदोंके गायनसे अन्तरके भावोंको उद्दीपन मिलता है। भाव-सागरके उद्वेलित हो उठनेपर चित्तकी वृत्ति अत्यधिक अन्तर्मुखी हो जाती है। उस समय यदि कोई व्यक्ति मिलकर चित्तकी वृत्तिको बहिर्मुख बनानेका प्रयास करता है, तब बहुत आन्तरिक संघर्ष होता है। उस अन्तर्मुखताकी स्थितिमें मिलने-कहने-सुननेकी बात तो अलग रही, यदि कोई केवल प्रणाम ही करना चाहता है तो उस समय भी बड़े संघर्षका अनुभव होता है।

इस प्रकारकी भावमयी चर्चा करते-करते बाबाने श्रीरामजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा – भैया श्रीराम! कल वे पाँच पद

सुनाकर तुमने जो लोकोत्तर सुख प्रदान किया, उसका प्रतिदान करनेके लिये मुझ अकिञ्चनके पास कुछ भी नहीं है।

* * * * *

सिखावनकी अनोखी रीति

संत अपने पासमें आनेवाले व्यक्तियोंको सुन्दर शिक्षा दिया करते हैं, पर शिक्षा देनेकी पद्धति हर संतकी एक-सी नहीं होती और सदा मधुर नहीं होती। संत यही चाहते हैं कि सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति अपनी मर्यादामें रहते हुए भगवदुन्मुखी जीवन व्यतीत करें। करनीसे, कथनीसे और रहनीसे प्रत्येक संतकी सिखावन यही होती है कि जीवन आस्तिक-सात्त्विक-संयमित-मर्यादित हो, पर हर संतकी सिखावन देनेकी रीति भिन्न-भिन्न प्रकारकी हुआ करती हैं। एक प्रसंग बाबाकी एक अटपटी पद्धतिका एक अनोखा उदाहरण हैं।

यह प्रसंग उस समयका है, जब समाधिपर स्मारक नहीं बना था। खुले अकाशके नीचे समाधि थी। समाधिपर स्मारक तो बहुत बादमें बना। समाधिके पास बैठे हुए बाबा किसी साधकसे कोई आवश्यक बात कर रहे थे तथा साधना सम्बन्धी ऐकान्तिक परामर्श दे रहे थे, तभी कलकत्तेके कुछ धनिक व्यक्ति बाबाके पास आकर बैठ गये। उन धनिक व्यक्तियोंके आ जानेसे पहलेसे चल रही बातचीतका क्रम खण्डित हो गया तथा ऐकान्तिक परामर्शका कार्य अधूरा रह गया। अब नये विषयपर बात चल पड़ी।

इन दिनों श्रीरामचन्दजी दम्माणी कलकत्तेसे आये हुए थे। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा तथा अमाप्य आत्मीयता थी। बाबाकेपास कई व्यक्तियोंको बैठे हुए देखकर उनके मनमें आया कि यह कोई प्राइवेट मिटिंग तो है नहीं। कई व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए हैं, ऐसी परिस्थितिमें क्यों न पूज्य श्रीबाबाके सान्निध्यका लाभ उठाया जाय। ऐसा सोचकर श्रीदम्माणीजी बड़ी श्रद्धा, बड़े उल्लासके साथ बाबाके पास गये तथा उन व्यक्तियोंके साथ बैठ गये, पर यह क्या हुआ? श्रीदम्माणीजीके सारे उल्लासपर वज्रपात हो गया। बाबाने श्रीदम्माणीजीको

डाँटना आरम्भ कर दिया – आप यहाँ इस समय क्यों आये? क्या इस समय मैंने आपको आनेके लिये कह रखा था? क्या यह समय आपसे बातचीत करनेके लिये निश्चित था? क्या आपको अपने वैभवका, अपने धनका, अपनी प्रतिष्ठाका, अपनी योग्यताका इतना घमण्ड हो गया है कि आप जब चाहें तब और जहाँ चाहे वहाँ चले जाते हैं? क्या आपको बड़प्पनका इतना मद हो गया है कि आप दूसरोंकी ओर देखना ही नहीं चाहते? कोई दूसरा बात कर रहा हो और अपनी कुछ व्यक्तिगत बातें पूछ रहा हो, पर उसका भी अभिमानमें डूबे हुए आप ख्याल नहीं करते?

उस समय श्रीदम्माणीजीकी हालत बड़ी नाजुक थी। बार-बार स्वयंको कोस रहे थे कि हाय, मैं क्यों आया? इस समय यदि हटूँ भी तो कैसे हटूँ? मन- ही-मन कह रहे थे कि अब बाबाके पास भूलकर भी बिना बुलाये नहीं आऊँगा। यदि आऊँगा तो तभी आऊँगा, जब मिलनका समय पूर्व निश्चित रहेगा। जितना ही पूज्य श्रीबाबा डाँटते जा रहे थे, उतना ही, अपितु उससे भी अधिक श्रीदम्माणीजी आत्म-भर्त्सना कर रहे थे। किसी प्रकार बाबाका बोलना बन्द हुआ और फिर वह बैठक विसर्जित हो गयी।

यह प्रसंग दिनमें पूर्वाह्नके समयका था। वहाँसे हटते ही खिन्न मन श्रीदम्माणीजी अपने कमरेमें आ गये। दिन भर रहा मन बहुत खिन्न, चेहरा बेहद उदास, भावनाएँ एकदम घायल। बाबाके डाँटनेका इतना अधिक असर हुआ कि सारा दिन मृतवत् व्यतीत हुआ। शामके समय किसी कामसे श्रीदम्माणीजी समाधिके पास गये। बाबाकी कुटियाकी ओर जायें अथवा बाबाकी कुटियाकी ओर झाँकें, इसका तो प्रश्न ही नहीं था। बाबाने भी उस डाँटनेके बादसे दिन भर श्रीदम्माणीजीको नहीं देखा था। बाबा भी टोहमें थे कि श्रीदम्माणीजी दिखें तो बुलाकर पूछूँ कि क्या हाल-चाल है, कैसी मनस्थिति है। श्रीदम्माणीजी ज्यों ही समाधिके पास आये, त्यों ही बाबाने उनको देख लिया तथा अपने पास बुलाया। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके पास जानेके लिये उल्लास नहीं था, पर अब न चाहते हुए भी जाना था। निकट बैठाकर बाबाने किञ्चित् वक्रता पूर्वक पूछा – क्यों, श्रद्धा डिग गयी क्या? आज दिन भर आप दिखलायी नहीं दिये, इधर झाँकने भी नहीं आये। आप भी क्या सोचते होंगे कि यह कैसा संन्यासी है, जो अकारण डाँटता है और आवश्यकतासे अधिक, अधिक नहीं, अत्यधिक डाँटता है?

श्रीदम्माणीजीने विनम्र स्वरमें कहा — बाबा! सचमुच गलती मेरी ही थी। बिना बुलाये मेरा आना सर्वथा अनुचित था। मेरी भूलोंको आप ही तो बतायेंगे। मुझे अपनी भूलके लिये दुःख है।

बाबाने कहा — आप जो कह रहे हैं, इसे मैं मान रहा हूँ, पर आपके स्वरमें वह प्रेम, वह उल्लास नहीं है, जो होना चाहिये। क्या एक ही डाँटमें उस सारेपर पानी फिर गया? हो सकता आप न कहें, पर आप मन-ही-मन कह रहें होंगे कि भले गलती तो थी, पर बाबाको इस प्रकारसे सबके सामने नहीं डाँटना चाहिये था और यदि डाँटना ही था तो इतना अधिक डाँटना नहीं चाहिये था।

इतना कहकर बाबा एक-दो मिनट चुप रहे तथा श्रीदम्माणीजीके चेहरेको देखते रहे, चेहरेके ऊपर उभरते भावोंकी रेखाओंको पढ़ते रहे। फिर स्वरमें नितान्त मिठास भरकर बाबाने तथ्यको बतलाना आरम्भ किया — पर अब आपको एक बात बताऊँ! क्या आप मेरी बातपर विश्वास कर सकेंगे? आप जानते हैं कि उस समय कलकत्तेके कुछ सेठ मेरे पास बैठे थे और जिस प्रकार आप आकर बैठ गये थे, उसी प्रकार वे भी आपसे पहले आकर बैठ गये। वे आकर बैठ गये थे अपने धनिकपनेके अहंकारमें डूबे-डूबे। उनके आनेसे वह ऐकान्तिक साधनात्मक चर्चा बन्द हो गयी, जो पहले हो रही थी। मुझे डाँटना उनको था, पर सीधे उनको डाँट नहीं सकता था। तभी आप आकर बैठे। आपके रूपमें भगवानने मुझे एक अवसर दिया। आप तो मेरे-से-मेरे हैं। आप मेरे हैं अतः आपको डाँट सकता था, पर उनको नहीं। अब आपको डाँट बतानेके बहाने उन धनिकोंको मैं डाँट रहा था। शिक्षा उनको देनी थी, पर माध्यम आपको बनाया।

बाबाकी यह बात सुनकर श्रीदम्माणीजीके भीतरकी सारी खिन्नता, सारी उदासी, सारी मलिनता तिरोहित हो गयी। बाबाकी यह आत्मीयता देखकर श्रीदम्माणीजीकी आँखें सजल हो गयीं। आँसुओंकी धारा कपोलोंपर बह चली। कहा नहीं जा सकता कि संत किसी व्यक्तिको या किसी परिस्थितिको अनुशासित करनेके लिये कौन-सी रीति अंगीकार कर लेगा।

* * * * *

स्मारक का निर्माण

बाबाकी भावनाके अनुसार चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माणके कार्यका शुभारम्भ सं. २०३२ वि. की श्रीराधाजन्माष्टमीके परम पावन दिवसपर हुआ। इस वर्ष १३ सितम्बर १९७५ के दिन श्रीराधा- जन्माष्टमी थी। प्रातः काल साढ़े आठ बजे श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हो गयी। इसके बाद माँ बाबाके पास गयीं और कहा – आजसे स्मारकके बननेका काम शुरू होगा। आप उसकी नींवमें अपने हाथसे थोड़ी गिट्टी रख दीजिये। यदि गिट्टी रखनेमें कोई अड़चन मनके भीतर उमड़-घुमड़ रही हो तो पूजाके रूपमें गुलाबके दो फूल रख दीजिये।

बाबाने भरी-भरी आँखोंसे माँको देखते हुए भरे-भरे स्वरसे कहा – मैया! मैं अपनी ओरसे अन्तिम अर्चना उसी दिन कर चुका, जिस दिन उन्होंने 'विदाई' ली थी।

इसके आगे बाबा स्वर रुद्ध होनेसे कुछ बोल नहीं पाये। सभी बाबाके स्वरकी विस्वरताको और मुखाकृतिकी विवर्णताको एकटक निहार रहे थे।

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।

इसके बाद माँ जब स्मारकका शिलान्यास करनेके लिये चलने लगी तो उसने बाबासे साथ चलनेके लिये आग्रह करते हुए कहा – आप कुछ मत करियेगा। बस, आप वहाँ नींवके किनारे खड़े रहियेगा।

माँके आग्रहको स्वीकार करके बाबा साथ-साथ चले आये। बड़ी भव्यताके साथ शिलान्यासका कार्य सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम पूज्या माँने गिट्टी डाली। इसके बाद अनेकों भाई-बहिनोंने अपने-अपने हाथोंसे स्मारककी नींवमें गिट्टी डाली।

स्मारकके निर्माणमें एक वर्षका समय लग गया। निर्माणका अन्तिमांश था स्मारकके ऊपर शिखरका लगाया जाना। शिखरका निर्माण संगमरमरके पत्थरसे राजस्थानमें हुआ। यह शिखर पाँच खण्डोंमें निर्मित हुआ है और इसका कुल वजन लगभग चार टन है। बाबाके निज जन श्रीरामचन्द्र सिंहजी खीची रहे। खीचीसाहब रेलवेमें इंजीनियर थे।

खीचीसाहबके प्रयाससे रेलवेके पुल विभागके कुशल और कर्मठ कर्मचारियोंने पञ्च खण्डीय शिखरको चढ़ाने और ठीकसे बैठाकर लगानेका कार्य किया। जिस समय अन्तिम पाँचवाँ खण्ड चढ़ाया जा रहा था, उसे देखकर बाबाकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं। बाबूजीकी संनिधिकी-साहचर्यकी-प्रीतिकी एक-एक झाँकी और एक-एक छवि उभर-उभर करके उनके अन्तरको आप्लावित-आलोलित-आन्दोलित-आनन्दित कर रही थी। शिखरके चढ़ाये जानेका सारा कार्य सं. २०३३ वि. भाद्र शुक्ल १, गुरुवार, २६ अगस्त १९७६ के दिन पूर्ण हुआ।

आज बाबाके हर्षोल्लासकी सीमा नहीं थी। कार्यके पूर्ण होते ही बाबाका भावोन्मादी हर्षोल्लास जन-जनमें कण-कणमें परिव्याप्त हो गया। 'श्रीगिरिराज महाराजकी जय', 'श्रीगिरिराज धरणकी जय', 'श्रीराधामाधवकी जय', 'पूज्य बाबूजीकी जय', 'पूज्य भाईजीकी जय' के तुमुल नादसे सारा वातावरण गूँज उठा।

इन दिनों गीतावाटिकामें लगभग दो सौ मजदूर काम कर रहे थे। सब मजदूरोंके लिये हलुआ-पूड़ी-साग बनवाया गया। बाबा स्वयं खड़े रहे और बाबूजीकी एक मात्र सुपुत्री परमादरणीया बाईके हाथसे सब मजदूरोंको हलुआ-पूड़ी-सागसे भरी पत्तल दी गयी। पत्तलोंको परोस-परोस करके सभी मजदूरोंको एवं अन्य जनोंको देनेमें लगभग पाँच घंटे लग गये और बाबा पाँच घंटेतक लगातार खड़े रहे।

शिखर सहित सारे स्मारककी ऊँचाई ४९ फीट है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीकी आठ सखियाँ हैं और प्रत्येक सखीके भावके छः स्तर हैं। इसके अतिरिक्त एक सामान्य स्तर है। इस प्रकार कुल हुए ८ × ६ = ४८ + १ = ४९। इसी संख्याकी प्रतीक है स्मारककी ऊँचाई। इसी स्मारकपर पञ्च देवोंके पाँच प्रतीक भी प्रतिष्ठित हैं। भगवान श्रीगणेश, भगवती श्रीशक्ति, भगवान श्रीशिव, भगवान श्रीसूर्यदेव एवं भगवान श्रीविष्णु, इन पञ्च देवताओंके पञ्च प्रतीक स्मारकके ऊपर पश्चिमकी ओर अंकित किये गये हैं। अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माण कार्यको भली प्रकारसे पूर्ण देखकर बाबाका अन्तर कितना अधिक आनन्दित हुआ, यह हमारे अनुमानसे परेका स्तर है और इसके बाद बाबाका जीवन था इस चिताके स्मारकको देखते रहना और प्रेमास्पदकी

मीठी यादमें डूबे रहना। वे चिताको एवं चितापर निर्मित स्मारकको भीगी निगाहोंसे देख-देख करके विभोर होते रहते थे तथा भावाधिक्यमें यदा-कदा बाबूजीकी अगाध-अपार प्रीतिकी सच्चर्चा अपने निज जनोंके मध्य करते रहते थे।

* * * * *

तरु-लताओंके प्रति आत्मभाव

सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंमें ही नहीं, अपितु तरु-लता-वल्लरियोंके प्रति भी बाबाकी अत्यधिक आत्मीयता थी। पेड़-पौधोंके प्रति उनका जो आत्मभाव था, उसके अनेक भावपूर्ण प्रसंग तब देखनेमें आये हैं, जब बाबूजीकी समाधिपर संगमरमरके विशाल स्मारकका निर्माण हो रहा था। स्मारक निर्माणके समय बाबाने सावधान किया था कि हरे-भरे वृक्षोंको नष्ट न किया जाय। समाधिके पास यत्र-तत्र अनेक पेड़-पौधे लगे हुए थे। जो पौधे जड़ सहित उखाड़कर दूसरी जगह लगाये जा सकते थे, केवल वे ही पौधे उखाड़े गये, सारे वृक्ष ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। जो पौधे उखाड़कर यहाँसे कहीं अन्यत्र लगाये गये, इस स्थानान्तरणकी प्रक्रियामें पौधोंको जो आघात पहुँचता, उसके लिये बाबाने उपवासके रूपमें कई बार प्रायश्चित किया है। हरे वृक्षकी डाल काटना, भले उसकी प्रेरणा सुन्दरीकरण-योजना हो, यह बाबाको सह्य था ही नहीं। बाबाके द्वारा सावधान किये जानेपर भी एक व्यक्तिने एक वृक्षकी डाल कटवा दी। जब बाबाकी दृष्टिमें यह बात आयी, तब उनका हृदय पीड़ासे भर गया। उस पीड़ाकी गहरी रेखाएँ उनके खिन्न चेहरेपर उतर आयी थीं। वे बार-बार कह रहे थे – पता नहीं, क्यों मेरे निर्देशकी उपेक्षा हो रही है। कार्य करनेवाले लोगोंको कैसे समझाऊँ कि यहाँकी सभी लताओं और पौधोंके साथ दिव्य केलिकी कुछ भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।

बाबाने इसके लिये कठोर प्रायश्चित इस रूपमें किया कि वे निर्जल-निराहार रहकर सूर्योदयसे सूर्यास्ततक लगातार खड़े रहे। 'घायलकी गति घायल जाने'।

ऐसा ही एक मार्मिक प्रसंग और है। बाबूजीके महाप्रयाणके पश्चात्

बाबा पनियालेके वृक्षके नीचे उस कुटियामें रहने लगे थे, जो तीन ओरसे खुली है। वे कुटियामें अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। अचानक वे अपनी चौकीपरसे उठे और आकाशकी ओर शून्यमें ध्यान पूर्वक देखते हुए कुछ सुननेका वे प्रयास भी कर रहे थे। वे देख भी रहे थे, कुछ सुन भी रहे थे और धीरे-धीरे आगे बढ़ भी रहे थे। कुटियाके पास जितने वृक्ष थे, एक-एक वृक्षके पास जाते, उसपर आँख गड़ाते और फिर आगे बढ़ जाते। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा और भी एक-दो लोग उनके साथ थे। साथके सभी लोग केवल साथ-साथ चल रहे थे, पर वे लोग समझ नहीं पा रहे थे कि बाबा क्या चाहते हैं और क्यों एक-एक वृक्षके पास जा रहे हैं। मौन व्रत होनेके कारण बाबाने कुछ भी नहीं बतलाया, किन्तु उनके चलनेके, उनके देखनेके और उनके खोजनेके ढंगसे क्रमशः ऐसा समझमें आने लगा कि किसीकी कराहटका स्वर उनके कानमें पड़ रहा है और वही स्वर ही उनका अनुसन्धान-सूत्र है, जिसके सहारे वे किसी विशिष्ट बातका पता लगाना चाह रहे थे।

अन्ततः सफलता मिल ही गयी। कुछ देरतक खोजते-खोजते बाबा एक बहुत बड़े वृक्षके पास आकर ठहर गये। वह विशाल वृक्ष उनकी कुटियाके पास ही था। वृक्षके चारों ओर चक्कर लगाकर देखते हुए उनको दिखलायी दे गया कि उसके तनेमें एक बड़ी मोटी लोहेकी कील धँसी पड़ी है। बाबा उसे पकड़कर निकालनेका प्रयत्न करने लगे। एक ओर बाबा थे अत्यन्त कृशकाय और दूसरी ओर वह कील थी बहुत धँसी हुई, अतः बाबाके प्रयत्नसे यह कील हिलनेका नाम ही नहीं ले रही थी। भाई कृष्णचन्द्रजीको बाबाका मन्तव्य समझमें आ गया। उन्होंने कोई बढ़ई बुलवाया और उसने तनेमेंसे लोहेकी मोटी कीलको बाहर निकाला।

कीलके धँसनेसे तनेका वह भाग सड़कर काला हो गया था। बाबाने उसे स्वयं साफ किया और उसे स्वच्छ जलसे धोया। फिर उसमें गोबर भर दिया। यह गोबर ही उस घावका मलहम था। ऐसा लग रहा था मानो वृक्षके उस भागका ऑपरेशन व बैंडेज किया गया हो।

यह सारी बात हो जानेके बाद लोगोंके समझमें आ गया कि हमलोग वृक्षकी उस कराहटको नहीं सुन पा रहे थे, जिसको बाबाने अपनी चौकीपर बैठे-बैठे सुन लिया था और वे चौकीसे उठकर अचानक चल पड़े

थे। संत- जगतकी सूक्ष्म बातें बड़ी विचित्र होती हैं, जो स्थूल-स्तरपर स्थित साधारण मानवके लिये सहज बोधगम्य नहीं हो पातीं। गोबरकी मलहम लग जानेके बाद बाबाके नेत्रोंमें अमृतवर्षिणी शान्ति और चित्ताकर्षिणी कान्ति परिव्याप्त थी। इसके अनन्तर बाबा अपने आसनपर आकर बैठ गये और नेत्र बन्द करके ध्यान मग्न हो गये। बाबाके साथमें जो लोग थे, वे सभी ही वृक्षोंके प्रति होनेवाले उनके आत्मभावको देखकर चकित थे। संत मलूकदासने संत-स्वरूपका बखान करते हुए कहा था –

मलुका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर।।

* * * * *

हरिनाम कीर्तन माधुरी

परम बाबूजीका तिरोभाव चैत्र कृष्ण दशमीके दिन हुआ था, अतः प्रत्येक दशमी तिथिको उनकी पावन समाधिके पास श्रीरामचरितमानसका अखण्ड पाठ हुआ करता है। २४ फरवरी १९७६ के दिन फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी दशमी तिथि थी। सबेरे बारह बजे दशमीके कार्यक्रमके लिये श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठकी तैयारी हुई। पूज्य श्रीमोतीजी महाराज पूजा करवानेके लिये आनेवाले थे। अभी उनके आनेमें कुछ देर थी। खाली समय देखकर भाई श्रीमुकुन्दजी गोस्वामीके सुपुत्र प्रिय संजीवने महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ कर दिया।

हरे राम रहे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

इस महामन्त्रके कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामीके कानमें पड़ी, जो उन दिनों गीतावाटिकाके अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तनके सर्व प्रधान कीर्तनिया थे। आप उधरसे निकल रहे थे। ज्यों ही कानमें कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि पड़ी, त्यों ही वे वहाँ बैठ गये और वे अपने हाथमें हारमोनियमकी पेटी लेकर महामन्त्रका कीर्तन करने लगे। प्रिय संजीव ढोलक बजाकर उनका साथ देने लगा।

भगवानकी कृपासे वह कीर्तन खूब जमा। कीर्तनका मधुमय स्वर

चारों ओर फैलकर वातावरणमें छा गया। बाबा अपनी कुटियापर गहरी नींदमें सोये हुए थे। वे उस मधुर स्वरको सुनकर जग गये। इतना ही नहीं, जैसे ही बाबाने वह मधुर ध्वनि सुनी, वे उठकर खिचें हुए चले आये। वे आकर श्रीगिरिराज परिसरमें खड़े हो गये और तल्लीन होकर कीर्तन सुनते रहे। श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी और प्रिय संजीव, इन दोनोंको पता ही न चला कि बाबा खड़े-खड़े कीर्तन सुन रहे हैं। वे दोनों बड़े भावके साथ कीर्तन करते रहे और बाबा कीतर्नको सुनकर अपनी मस्तीमें डूबे रहे। जिन भक्तोंको पता चला, वे भी खिचें-खिचें चले आये और दूर खड़े होकर बाबाकी भाव-विमुग्ध-दशाका दर्शन करते रहे। लगभग एक घण्टेतक रसकी मधुर सरिता बहती रही।

श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठमें विलम्ब होता हुआ देखकर उस मधुर कीर्तनको विराम देना पड़ा। सायंकाल भिक्षाके समय बाबाने कहा — आज दोपहरके समय महामन्त्रका संकीर्तन अत्यधिक मधुर और भावपूर्ण था। जीवनमें ऐसा कीर्तन कभी-कभी ही सुननेको मिलता है।

* * * * *

दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले

२५ अप्रैल १९७७ के प्रातः कालका समय है। श्रीगिरिराज परिसरमें बैठे हुए भक्तजन प्रतीक्षा कर रहे हैं श्रीबाबाकी। कई व्यक्तियोंकी दृष्टि बार-बार बाबाके कुटीरकी ओर उठ जाती है, यह देखनेके लिये कि बाबा आ रहे हैं अथवा नहीं। बाबा यदि परिक्रमा स्थलीमें आ जाते तो परिक्रमा आरम्भ हो जाती। इस भक्त समुदायमें विश्वविद्यालयके प्राध्यापक तथा सरकारी कार्यालयोंके कर्मचारी आदि को विशेष उतावली और उत्सुकता है। इन लोगोंको अपने कार्यपर जाना है और इन सबकी इच्छा है कि कार्यपर जानेसे पूर्व कम-से-कम परिक्रमा करते हुए बाबाके दर्शन ही मिल जायें, भले परिक्रमामें पूरे समयतक बैठनेका अवसर नहीं मिले।

थोड़ी देर बाद इस प्रतीक्षा-रत भक्त समुदायको यह सूचना मिली कि बाबाकी तबीयत ज्यादा खराब है, अतः वे अभी विश्राम कर रहे हैं। परिक्रमा कब होगी, यह अनिश्चित है। इस सूचनाके मिलते ही वह

समुदाय बिखर गया। दूकानदार, अध्यापक, कर्मचारी, चिकित्सक आदि लोग अपने-अपने कार्यपर चले गये। अन्य लोग भी अपने-अपने कार्यमें लग गये, परन्तु परिक्रमामें नित्य बैठनेका जिनका नियम था, वे सभी विराजे रहे।

तबीयतके कुछ ठीक होनेपर लगभग मध्याह्नके समय बाबा परिक्रमा करने हेतु गिरिराज परिसरमें पधारे। भक्त समुदाय भी एकत्रित हो गया। बाबाने अपनी गुदड़ी रखकर अर्चना की और उसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानी आरम्भ कर दी।

अब नित्यके क्रमके अनुसार सरस-हृदय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजीने पद-गान आरम्भ किया। आज उपस्थित भक्तोंकी संख्या भी कम ही है और वातावरण अत्यधिक शांत है। ऐसा अनुकूल अवसर देखकर श्रीहरिवल्लभजीने गम्भीर भावोंके पदोंका गायन आरम्भ किया। आरम्भ किया रसिक शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीके भावभरे पदसे –

सौंधे न्हाय बैठी पहिरि पट सुंदरी जहँ फुलवारी तहँ सुखवति अलकैं।
कर नख सोभा कल केस सँवारति मानो नवघन में उडगन झलकैं।।
बिबिध सिंगार लिये आगै ठाढ़ी प्रिय सखी भयौ भरु आनि रतिपति दल दलकैं।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छबि निरखत लागत नाहीं पलकैं।।

श्रीहरिवल्लभजी आज बड़े चावके साथ गा रहे हैं। कभी पदकी पूरी पंक्तिको, कभी पंक्तिके अर्धांशको, कभी कतिपय शब्द समूहको दुहरा-दुहरा करके, कई बार आवृत्ति कर-करके गा रहे हैं। वे इतने ललित स्वरमें, ललित रीतिसे गा रहे हैं कि पदमें वर्णित छवि मनकी आँखोंके सामने स्वतः नृत्य करने लगती है। श्रीहरिवल्लभजीके अन्तरका अनुराग और कण्ठका राग क्रमशः प्रस्तुत करता जा रहा है उस दिव्य भावराज्यकी एक-एक उमंगको, एक-एक भंगिमाको, एक-एक छविको। स्नानार्थ प्रस्तुत है सुवास-पूर्ण जल। वह सुवास है नेहमयी सखियोंके हृदयका साक्षात् प्रतीक। ऐसे सुवासित जलसे प्रातः स्नान करके और स्नानोपरान्त परिधान धारण करके शृंगारोत्सुका नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी चिन्मय छवि अद्‌भुत है। नख-शिख रूपवती श्रीश्यामाजी विराजमान हैं पुष्पवाटिकामें। जिन पुष्पोंकी समस्त सुषमा उन अद्वितीय शोभामयीकी नख-कान्तिपर प्रणत है और जिन पुष्पोंकी समस्त सुगन्ध

उन अद्वितीय सुसौरभाके पद-पद्मोंपर समर्पित है, ऐसी अद्वितीय सुन्दरी श्रीश्यामाजी उस सदा सुन्दर पुष्पवाटिकामें बैठी अपने सिलसिले केशोंको फैलाये हुए सुखा रही हैं। उनके काले और कुञ्चित केश, उनके चिकने व चमकदार केश, उनके सुदीर्घ एवं सघन केश, उन सुन्दर केशोंका फैलाव ऐसा है, जिसपर श्याम मेघोंकी सघनता-श्यामलता बलि-बलि जाती है। उन विस्तृत केशोंके मध्य सुखाने और सुलझानेके लिये संचरण हो रहा है कोमल-कोमल, पतली-पतली, गोरी-गोरी अँगुलियोंका। उसीके साथ सर्वाकर्षिका छवि शोभित है ग्रीवाकी लटकनकी। उन काले-काले केशोंके मध्य कर-नखकी कान्तिकी झलकनकी छवि ऐसी अनोखी है मानो बादलोंकी ओटसे तारागण झाँक रहे हों। इस प्रकार छवि-पर-छवि, अनेक छवियोंके दृश्य, ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी भावसहित गाते जा रहे थे, त्यों-त्यों उस चिन्मय छविके अनेक दृश्य मानसिक नेत्रोंके सामने मूर्तिमान होते जा रहे थे। और इस गायनका अनोखा प्रभाव था बाबापर। तन कहीं और, मन कहीं और। तनसे दूर मन, बहुत दूर, बहुत-बहुत दूर उस चिन्मय भावराज्यमें। आज तो 'बाहर' और 'भीतर'में मेल नहीं। बाहर यही दीख रहा है कि बाबा परिक्रमा लगा रहे हैं, पर शरीरके अंगोंपर छायी हुई मस्ती संकेत कर रही है, संकेत नहीं, स्पष्ट रूपसे कह रही है कि बाबा परिक्रमा नहीं लगा रहे हैं, अपितु भावसागरमें लहरा रहे हैं। बाबाकी यह मस्ती श्रीहरिवल्लभजीको और भी मस्तानी रीतिसे गायनकी प्रेरणा दे रही है।

वातावरणमें रसमयता-मदमयता बढ़ती जा रही थी कि अचानक रंगमें भंग हो गया। सारा मजा किरकिरा हो गया। बाबाका जी मिचलाने लगा। प्रातः तबीयत तो खराब थी ही। बाबा परिक्रमा पथसे एक ओर दूर हटकर वमन करने लगे। बाबाको वमन करते देखकर श्रीगुरुचरणजी दौड़े, धूपसे बचाव करनेके लिये छाता लेकर श्रीचोपड़ाजी दौड़े, मुख-प्रक्षालनेके लिये जल भरा कमण्डलु लेकर श्रीभगतजी दौड़े। बाबाको काफी वमन हुआ। कुल्ला करके तथा मुँह धो करके बाबा परिक्रमा करनेके लिये पुनः उपस्थित हुए। उनके मुखकी श्रान्ति देखकर वातावरणमें खिन्नता छा गयी। वमन-जनित क्लान्ति उनके

मुख-मण्डलपर व्याप्त थी।

भले शरीरपर कुछ भी आ पड़े, भले इस शरीरको किसी भी प्रकारका कष्ट-क्लेश भोगना पड़े, पर परिक्रमा तो करनी ही है। इस प्रकारके दृढ़ निश्चयी बाबाने अपनी परिक्रमा पूर्ववत् आरम्भ कर दी। परिक्रमाके आरम्भ होते ही पद-गान भी आरम्भ हो गया। भले वही पद है, वही राग है, वही स्थान है और वे ही गायक हैं, पर उपस्थित लोगोंका मन यही सोच रहा था कि अब वह रंग नहीं आयेगा, जो पहले था। ऐसा सोचना स्वाभाविक था। प्रथम तो वमन-जनित क्लान्ति, द्वितीय वैशाखके मध्याह्नकी तप्त बेला और तृतीय गर्मीमें परिक्रमा करनेका श्रम, अतः ऐसा लगता था कि वह रंग नहीं जम पायेगा। वह रंग तो तिरोहित हो चुका। बाबाके कष्टको देखकर सब यही सोच रहे थे कि वह रस, वह रंग अब उमड़ेगा ही नहीं, पर हुआ इस सम्भावनाके विपरीत। कुछ क्षणके बाद ही बाबाके मुख-मण्डलकी सारी क्लान्ति, सारी श्रान्ति न जाने कहाँ तिरोहित हो गयी। ऐसी तिरोहित हो गयी, मानो कुछ हुआ ही नहीं था। बाबाके मुख-मण्डलपर अब क्लान्ति नहीं, कान्तिका राज्य था। उनके अंग-अंगमें अब श्रान्ति नहीं, स्फूर्ति थी। बाबाके शरीरकी स्फूर्ति, उनके नेत्रोंकी दमक, उनके मुखकी आभा, उनके अधरोंकी मुस्कान रह-रह करके बता रही थी कि बाबा शरीर नहीं, शरीरसे बहुत ऊपर हैं। उनके तनका अनुगामी मन नहीं, बल्कि उनके मनका अनुगामी तन है। उनके मनकी सरसता, उनके भीतरकी उमंग उनके तनके अंग-अंगसे झाँक रही थी, पोर-पोरसे झर रही थी। श्रीहरिवल्लभजीके भावमय गायनसे बाबाके भीतर भाव-सागर लहराने लगा था। उसकी रसमयी तरंगें भीतरकी सीमाको पार करके बाहर आ-आ करके तनको छू रही थीं और रससिक्त तनकी रसमयी-चेष्टाएँ-भंगिमाएँ बना रही थीं गिरिराज परिसरके सम्पूर्ण वातावरणको अत्यधिक रसमय।

वातावरणकी ऐसी रसमयता श्रीहरिवल्लभजीको अधिकाधिक प्रभावित करती जा रही थी। उन्होंने नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी रूप-माधुरीका जो पहला पद गाया था, उसके बाद तो रूप-माधुरीके और भी पद प्रस्तुत किये। इन पदोंमें था सौन्दर्य-लावण्य-माधुर्य-सदना

श्रीश्यामाजीके दिव्य रूपका अनोखा वर्णन; अरुणिम कपोलोंपर अंकित चित्रावलीका वर्णन, विविध वर्णके पुष्पोंसे मण्डित वेणीका वर्णन, सुकुमार गौर वदनपर नील परिधानका वर्णन, मणिमुक्तामय स्वर्णिम आभरणोंसे भूषित अंगांगोंका वर्णन – इस प्रकार अनोखे वर्णनोंकी सुदीर्घ श्रृंखलाका आरोह-अवरोह-लसित राग-रागिनिओंके ललित माध्यमसे मधुमय प्रस्तुतीकरण; यह सारा कुछ बड़ी विचित्र रीतिसे होता जा रहा था। इस सरस वातावरणको देखकर मनमें यही प्रश्न उठ रहा था कि आश्चर्यमें डूबें अथवा आनन्दमें ?

बाबाकी तन्मयता भी अनोखी थी। वे कभी तो हाथसे ताली बजाते, कभी फुदकते हुए चलते, कभी भुजा-वल्लरियोंका प्रसारण-संकुचन करते, कभी श्रीहरिवल्लभजीके सामने खड़े होकर स्वरमें स्वर मिलाते, कभी आलाप भरते, कभी चलते-चलते कमर लचकाते। उनकी अदाएँ विचित्र-विचित्र थीं। इतना सारा कह करके भी यह सर्वांशमें सत्य है कि बाबाकी उस भावमयी, नहीं-नहीं महाभावमयी स्थितिकी क्षीणतम झाँकी भी प्रस्तुत नहीं हो पा रही है। संसारसे दूर, बहुत दूर, शरीरके सुख-दुःखसे कल्पनातीत दूर, जहाँ न शरीर है, न जगत है, न जगतके मम-परात्मक द्वन्द्व हैं; जहाँ है एक मात्र दिव्य रूपका चिन्मय आकर्षण, जहाँ है एकमात्र दिव्य लीलाका चिन्मय विलास, जहाँ है एकमात्र दिव्य महाभावोदधिका चिन्मय उद्वेलन, जहाँ है एकमात्र दिव्य आनन्दका चिन्मय उच्छलन; ऐसे लोकातीत-शब्दातीत महाभावमें निमग्न बाबाकी चेष्टाओंका चित्र यह लौकिक लेखनी शब्दोंमें भला कैसे अंकित कर पायेगी ? एकदम स्पष्ट लग रहा था कि बाबा अपने उस वास्तविक स्वरूपमें (महाभाव स्वरूपमें) स्थित होकर इस पद-लालित्यका रसास्वादन कर रहे हैं। इतना ही नहीं, यह भी साफ-साफ भान हो रहा था कि वह उमड़ता हुआ आनन्द, भीतरका वह असीम-अगाध आनन्द बाहर बह पड़नेके लिये अकुला रहा है।

पद-गानकी सम्पन्नताके उपरान्त नित्य नियमके अनुसार 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' का कीर्तन प्रारम्भ हुआ, पर बाबाका भावोद्वेलन अभी वैसा ही है, इस टिप्पणीके स्थानपर अपितु यह कहना अधिक समीचीन होगा कि वह मस्ती बढ़ती ही जा रही है। बाबाका

फुदक-फुदक करके परिक्रमा लगाना, नृत्यमयी गतिसे थिरक-थिरक करके चलना, नेत्रोंकी पुतलियोंको नचाना, अधरोंका कभी मुस्कुराना कभी विहसना, हथेलीको कभी खोलना कभी बंद करना, गर्दनको कभी इधर कभी उधर लचकाना, कभी श्रीहरिवललभजीके स्वरमें स्वर मिलाना, कभी अलाप भरना, इस प्रकार आज सब भंगिमाएँ विचित्र-विचित्र हैं। आज एक-से-एक अनोखी-से-अनोखी चेष्टाएँ हो रही थीं।

बाबाकी ऐसी रसमयी, ऐसी महाभावमयी स्थिति देखकर श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया। भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजीका ललित कण्ठ गाने लगा पद, नाम-संकीर्तनके स्थानपर एक चिर-परिचित पद। इस समय नाम-संकीर्तन हो रहा था और पदगानका क्रम कभीका पूरा हो चुका था, फिर भी भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजी बाबाकी ओर लक्ष्य करके सत्यको अनावृत्त करते हुए गाने लगे। उनसे गाये बिना नहीं रहा गया और वे गाने लगे –

''साँवरे चंद गोबिन्द के रसभरी दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले''

इस पंक्तिका गाया जाना क्या था, पूज्य बाबाका रहा-सहा बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो गया। बाबा झूम उठे। उनके भीतरका महाभावसागर, उनकी बाह्य चेष्टाओंमें भी खुलकर लहराने लगा। बाबाके रसप्लावित तनकी मुखर चेष्टाएँ उद्घोषित कर रही थीं, उनकी पुतलियोंका लास्य श्रीहरिवल्लभजीकी सांकेतिक उक्तिको अनुमोदित कर रही थीं – वस्तुतः साँवरे चन्द गोविन्दके रससे भरी दूसरी कोकिला, महाभाव-स्वरूपा श्यामा ही मधुर स्वर भरती हुई प्रत्यक्ष विलसित हो रही हैं।

आज बाबाका अंग-अंग झूम रहा था, भक्तोंका तन-मन झूम रहा था, परिसरका कण-कण झूम रहा था और वृक्षोंका पत्ता-पत्ता झूम रहा था। इस पावन प्रसंगको और इस पावन परिसरको पुनः पुनः प्रणाम।

अब ४ मई १९७७ के दिन किसे पता था कि दस दिन पूर्व वाले सरस प्रसंगका दिव्य दर्शन पुनः उसी पावन परिसरमें शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगा? यह परम सौभाग्यकी बात है कि २५-४-७७ के दस दिन बाद ही ४-५-७७ को बाबाकी वैसी ही रसमयी मस्तीके

दर्शनका अवसर फिरसे सुलभ हुआ।

आज आकाशमें बादल छाये हुए हैं। बादल सघन हैं। समीर तीव्र नहीं है, पर मन्द भी नहीं है। कहीं वर्षा हो चुकी है, अतः पवनमें पर्याप्त शीतलता है। ठण्डी-ठण्डी पुरवैयाके झोंकोंमें वाटिकाके वृक्ष झूम रहे हैं और लताएँ नृत्य कर रही हैं। कोयलकी कूक, मधुर कूक इस सुहावने मौसमको और भी अधिक लुभावनी बना रही है। भले ये दिन गर्मीके हैं और मास ज्येष्ठका है, पर इस जेठ मासमें ही सावनका समा बँधा हुआ है। उद्दीपनकी ऐसी सामग्री प्रस्तुत हो, ऐसा लुभावना वातावरण उपस्थित हो और श्रीहरिवल्लभजी इससे असंपृक्त- अप्रभावित रह जायें, यह कैसे सम्भव है? ज्यों ही बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा प्रारम्भ की, श्रीहरिवल्लभजीने मल्हारकी तान छेड़ दी। उन्होंने मल्हार रागमें मौसमके अनुकूल ही पद उठाया। उस दिनकी तरह आज भी श्रीहरिवल्लभजीने सर्व प्रथम गाया रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीका भावभरा पद, जिसमें वर्षा ऋतुका मनोहर वर्णन है —

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहै बोलत मोरनि।
नीके बादर नीके धनुष चहुँ दिस नीकौ श्रीवृन्दाबन आछी
नीकी मेघनि की घोरनि॥
आछी नीकी भूमि हरी हरी आछी नीकी बूढ़निकी
रेंगनि काम किरोरनि।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामाके मिलि गावत राग
मलार जम्यौ किसोर किसोरनि॥

क्या ही सुन्दर हो, यदि ऐसी सुन्दर और सुहावनी ऋतु सदा-सर्वदा बनी रहें, जहाँ मयूर मेघको देख-देख करके नृत्य कर रहे हों और मेघोंकी गर्जनसे स्वर मिलाकर वे कुहक रहे हों। एक ओर ऊपर नभमें सघन श्यामल मेघोंके मध्य सतरंगी धनुषकी वह मनभावनी शोभा है तो दूसरी ओर नीचे पृथ्वीपर हरी-हरी दूब और हरे-हरे पत्तोंसे आच्छादित भूमिकी यह नयनाकर्षिणी सुषमा है। अम्बरकी मनभावनी शोभा और अवनीकी नयनाकर्षिणी सुषमा उन नित्य किशोरी-किशोरमें किलोलकी कामना उद्दीप्त कर देती है और वे नित्य युगल उमंगमें भरकर मल्हार राग अलापने लगते हैं।

श्रीहरिवल्लभजीके पदगायनसे रंग जमता गया, अपितु रंग गहरा होता गया। कभी-कभी यह भ्रम होता कि हम लोग इस वाटिकामें हैं अथवा उस वृन्दावनमें हैं? ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी इस पदको ललित स्वरमें गाते, त्यों-त्यों ऐसा लगता मानो वृन्दावनके श्रावण मासकी वह मनोहारिणी हरीतिमा और हरीतिमा-विहारी वे नित्य युगल इस वाटिकाके परिसरमें ही अवतरित हो गये हैं। यह असम्भव-सी बात आज सम्भव कैसे लग रही है? क्या इस अवतरणका श्रेय स्वामी श्रीहरिदासजीके भावमय पदको दें? अथवा इस अवतरणका हेतु श्रीहरिवल्लभजीका ललित गायन ही है? ये बातें कुछ अंशतक सत्य कही जा सकती हैं, पर असली हेतु तो कुछ और ही है और वह है बाबाके भीतरका 'दिव्य वृन्दावन'। बाबाका वह 'दिव्य वृन्दावन' ही परिसरके वातावरणको दिव्यता प्रदान कर रहा है और इस दिव्यतासे प्रभावित परिसर-वातावरण उपस्थित भक्त-समुदायको दिव्य भावोंसे भावित कर रहा है।

श्रीहरिवल्लभजीके गायनके संग-संग बाबा अपनी भावमयी भंगिमाओंके साथ परिक्रमा भी करते चले जा रहे हैं। परिक्रमा करते-करते कभी हाथका फैलाना, कभी हथेलीसे ताली बजाना, कभी मृंदगको बजानेकी-सी चेष्टा करना, कभी स्वरमें स्वर मिलाकर आलाप लेना, कभी अँगुलियोंको नचाना, ये सभी चेष्टाएँ बाबाकी रसमयताकी झाँकी प्रस्तुत कर रही हैं और उनकी रसमयता सारे परिसरको रसमय बना रही है।

अवसरके अनुकूल श्रीहरिवल्लभजीने तीन-चार पद गाये, पर अन्तिम पद गाया —

कदम तर ठाढ़े हैं पिय प्यारी।
मोहन के सिर मुकुट बिराजत इत लहरिया की सारी॥
मंद मंद बरसत चहुँ दिसि ते चमकत बीजु छटा री।
मुरली बजावत श्रीनँदनंदन गावत राग मल्हारी॥
लेत तान हरि के सँग राधा रंग होत अति भारी।
श्री विट्ठल गिरिधर को रिझवत श्रीवृषभानु दुलारी॥

इस पदके गायनसे इतना भावोद्रेक हुआ कि पूज्य बाबाको

अपनी सुधिकी विस्मृति-सी हो गयी। प्रथम तो पदमें वर्णित भावोंका लालित्य और फिर गायनमें स्वरके आरोहावरोहका लालित्य, इन दोनों लालित्यने परिक्रमामें बाबाकी गतिको, उनके चरणोंके उत्थापन-संस्थापनको लास्यमय बना दिया। ऐसा भान हो रहा था, मानो यह परिक्रमा-स्थली नहीं, रास-स्थली है। इस पदको गाते-गाते जब श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा, रंग होत अति भारी'* यह पंक्ति गायी, उस समय बाबा देखते-देखते, इशारे-ही-इशारेमें एक बड़ा गम्भीर और भावपूर्ण संकेत ढुलका गये। जब श्रीहरिवल्लभजी आलाप लेते तो संग-संग बाबा भी आलाप लेते ही थे। बाबा श्रीहरिवल्लभजीके साथ रह-रह करके तानमें तान मिलाते ही थे। ज्यों ही श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा'* गायी, त्यों ही बाबाने अपने चितवनकी कोरसे आभास दे दिया कि समक्ष स्थित 'हरि'के संग यह 'महाभाव-स्वरूपा राधा' तान ले रही है। बाबाके महाभावमय नयनोंके रसमय कगारोंसे इस संकेतके ढुलकते ही, जो अति भारी रंगका प्रवाह बह चला, रंगके उस उमड़नका आस्वादन वे ही कर पाये, जो उस क्षण उस भारी रंगमें लहरा रहे थे। नयनोंका वह नर्तन, संकेतकी वह ढुलकन, रंगकी वह उमड़न, भावुकोंका वह आस्वादन, यह सब एक-से-एक बढ़कर था, एक-से-एक अनोखा था। कौन कहेगा कि बाबा संन्यासी हैं? अथवा यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बाबाने संन्यासके प्रतीक स्वरूप गेरुए रंगका गैरिक वस्त्र इसलिये धारणकर रखा है कि उनके जीवनके अन्तरंग रंगपर एक आवरण पड़ा रहे और उनके जीवनका वास्तविक स्वरूप जगतकी दृष्टिसे ओझल रहे।

जब इस पदके गायनको विराम देनेका क्षण आया, उस समय तो और भी गजब हो गया। सारे पदको गा चुकनेपर श्रीहरिवल्लभजीने पदकी आरम्भिक दो पंक्तियाँ समाप्तिके रूपमें गाया। वे (श्रीहरिवल्लभजी) भी इस रंगके प्रबल प्रवाहमें लहरा रहे थे और लहर-लहर करके गा रहे थे। इस पदकी *'मोहन के सिर मुकुट बिराजत, इत लहरिया की सारी'* पंक्तिको श्रीहरिवल्लभजीने ज्यों ही गाया और 'इत लहरिया की सारी' यह पंक्ति कर्ण-कुहरोंको गुञ्जित

करती हुई ज्यों ही बाबाके दिव्य मानसमें ध्वनित हुई; उस ध्वनिकी प्रतिध्वनि बाबाकी दोनों अँगुलियोंपर छा गयी। बाबाने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे अपने गैरिक वस्त्रके अंचलका एक छोर पकड़ा और दूसरा छोर पकड़ा अपने दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें आँचलके दोनों छोरको पकड़ना, अँगुलियोंसे आँचलका तानना, तने आँचलमें अपने आप कुछ लहरियोंका पड़ जाना, इसके बाद आँचलको कुछ हिला करके, ग्रीवाको कुछ लटका करके, नेत्रोंको कुछ बन्द करके और कुछ मन्द मुस्कुरा करके देखना – कितना भावपूर्ण वह दृश्य था, कितनी रसमयी वह झाँकी थी? 'इत लहरिया की सारी' का भाव आँखोंके सामने एकदम साकार हो उठा था। 'लहरिया की सारी' से सुशोभित महाभावमयी श्यामाजीकी रसमयी झाँकी 'इत' परिसरमें प्रत्यक्ष थी। श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया और 'इत लहरिया की सारी' के स्थानपर वे गा बैठे, बिके-बिके हृदयसे, बहके-बहके नयनोंसे, बलि-बलि स्वरसे वे गा बैठे – 'इत अरुन रँग की सारी'।

हे विधाता! तुमसे यही याचना है, 'ए हो बिधिना तो सौं अँचरा पसार माँगौ', बस, तू यही कामना पूर्ण कर दे – 'इत अरुन रँग की सारी' की अनोखी-अद्भुत छवि सदैव तन-मन-नयनमें रमी रहे।

* * * * *

भावुक-भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव

१४-७-१९७६ के दिन भावुक भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तवके दर्शनका सौभाग्य मिला। श्रीवास्तवजीके जीवनकी एक भाव-भरित फलक प्रस्तुत करनेके पूर्व उनके परम श्रद्धेय संत श्रीरघुजीका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक लग रहा है। संत श्रीरघुजीका नाम था श्रीठाकुरदासजी उदेशी। जन्म संवत् १९६४ माघ मासमें रानीपुर, सिन्धमें हुआ था। इनकी जाति भाटिया थी। इनके पूर्वज दस-बारह पीढ़ी पहले जैसलमेरसे उठकर सिन्धमें आ बसे थे। आपके पिताका नाम श्रीवल्लभदासजी उदेशी है, जो कराचीमें रहते थे। स्त्रीका देहान्त पचीस वर्षकी आयुमें हो गया था। माता-पिताके बहुत आग्रह करनेपर भी आपने पुनः विवाह नहीं किया। कराचीमें इण्टरमीडियेट तक पढ़नेके बाद तीन वर्षतक बम्बईमें पढ़े और वहाँ

बी.कॉम. की परीक्षा देकर कराची लौट गये। बम्बईमें किसी महापुरुषके संगसे आप भगवान श्रीरामकी उपासना करने लगे। उपासनाकी बड़ी लगन लग गयी। भगवान श्रीरामके ध्यान और नाम स्मरणका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बोलना-चालना कम हो गया, धीरे-धीरे भगवानके नाम और गुण सुनकर हृदय द्रवित होने लगा। तदनन्तर किसी मित्रसे कुछ सुनकर आप गोरखपुर आ गये। यहाँ कुछ दिन रहकर फिर कराची लौटे। पिताजीने काम-धंधेकी बात की, पर इनका मन दूसरी ओर जाता ही न था। इसलिये उन्होंने अखण्ड मौन धारण कर लिया, जो जीवनके अन्ततक रहा। इसके बाद फिर वे गोरखपुर चले आये। यहाँसे बीचमें कुछ दिनोंमें लिये क्रमशः अयोध्या, चित्रकूट और प्रयाग गये थे। फिर अन्ततक यहीं रहे और निरन्तर विरह भावसे भावित रहे।

श्रीरघुजीकी विरह-दशा तो अति विचित्र थी। स्तम्भ, कम्प, अश्रु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, पुलक आदि प्रेम-लक्षणोंका मानो श्रीरघुजीसे स्थायी सम्बन्ध हो गया था। आँसू तो उनके सूखते ही नहीं थे। बाबूजीने किसी-किसी समय बीस-बीस घंटेतक उनको रोते ही देखा है। उनकी नासिकाके दोनों ओरके कपोलोंपर अश्रु-प्रवाहके निशान पड़ गये थे। अविरल अश्रु-प्रवाहके कारण प्रवाह-पथ लगभग गल-से गये थे। वे सदा भावावेशकी-सी अवस्थामें ही रहते थे। सत्संगकी बात तो वे सुनते थे, परंतु अन्य कोई भी चर्चा पास बैठे हुए भी नहीं सुनते थे। वे किसी अन्य ही राज्यमें विचरण करते थे।

वे भगवान श्रीरामके अनन्य उपासक थे और भगवान श्रीरामके एक चित्रपटकी पूजा करते थे। वह चित्र उनके लिये बहुमूल्य वस्तु था। वे इसमें साक्षात् भगवानको देखते थे। इनका दर्शन वे किसीको नहीं कराते थे। कङ्गालके धनकी भाँति सदा उन्हें छिपाये रखते थे। अनुनय-विनय करनेके बाद भी अपने श्रीविग्रहका दर्शन रघुजी नहीं कराते थे। कई बार बाबूजीद्वारा अनुरोध किये जानेपर एक बार उन्हें रघुजी अपने कमरेमें ले गये, अपने उपास्य चित्रपटकी केवल तनिक झाँकी करायी और तब इतना ही बोले – 'मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दर्द न जाने कोय'। दिन-रात 'रघु' नामका उच्चारण मन और वाणीसे करते थे, इसलिये उनका नाम 'रघुजी' पड़ गया।

उन्होंने रामनवमीका उत्सव मनाया, एकादशीका निर्जल व्रत किया। रातको नियमानुसार स्वाध्याय करते रहे। एक साधकको बुलाकर जटायुकृत अन्तकालकी स्तुति दो बार सुनी और द्वादशीके प्रातःकाल प्रयाण कर गये। शरीरत्यागके पहले दिनतक उन्होंने स्वयं कुँएसे जल निकालकर अपनी नित्य क्रिया की। न किसीसे सेवा करवायी, न प्रणाम कराया। बड़े ही सच्चे भक्त थे।

१४-७-१९७६ के दिन जिन भावुक-भक्तके दर्शन हुए, वे श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव इन्हीं श्रीरघुजीके भक्त थे। श्रीरघुजीके प्रति वे गुरु-भाव रखते थे। बाबाने ऐसा बताया है कि जब श्रीरघुजीने अपनी देहका विसर्जन कर दिया तो कुछ समय बाद उन्होंने श्रीश्रीवास्तवजीको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि श्रीरघुनाथजीके जिस श्रीचित्रपटका मैं पूजन किया करता था, वह तुम श्रीभाईजीसे माँग लाओ। बाबूजीने उनको दे भी दिया।

श्रीश्रीवास्तवजीने अनेक जिलोंमें जिलान्यायाधीशके पद पर कार्य किया है। वहाँसे फिर वे दिल्ली स्थित सुप्रीमकोर्टमें चले गये। सुप्रीमकोर्टमें कार्य करते हुए आप रिटायर हो गये। काफी वृद्ध हो जानेसे वे गठिया और कुष्ठसे पीड़ित थे। उनके हाथोंकी सभी अँगुलियाँ टेढ़े-मेढ़े ढंगसे मुड़-मुड़ करके बड़ी बुरी रीतिसे विकृत हो गयी थीं। दोनो पैरोंकी सभी अँगुलियोंपर पट्टी बँधी थी, जो घाव-ग्रस्त होनेकी सूचना दे रही थी। आँखोंसे कम दीखता था, कानोंसे बहुत कम सुनता था। शरीरसे हिलना-डुलना-चलना-फिरना सम्भव नहीं। उनकी विकलाङ्गता और रुग्णताको देखकर कोई सोच भी नहीं सकता कि ऐसे आवरणके भीतर एक महान संतात्माका निवास है।

बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक थे डा० श्रीचक्रवर्ती। श्रीश्रीवास्तवजीने डा. चक्रवर्तिके सामने बाबाके दर्शनकी अभिलाषा व्यक्त की। बहुत पहले वे बाबूजीके साथ बाबाको देख चुके थे, मिल चुके थे। डा० श्रीचक्रवर्तीने बाबासे मिलकर दिन निश्चित कर लिया। बाबाने कार भिजवायी, साथमें दो व्यक्ति भेजे, जो उन्हें उठाकर कारमें बैठा सकें। उनके लड़केने श्रीश्रीवास्तवजीसे कहा – बाबाजीके व्यक्ति आपको लिवा लानेके लिये आये हैं।

इतना सुनते ही उनको रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आँसू बह

चले, बाबाकी जय-जयकार करने लगे और अपने बेटेसे कहा —बेटा! इन भक्तोंकी चरण-रज मेरे मस्तकपर लगा दो।

श्रीश्रीवास्तवजीको कारमें बैठाकर गीतावाटिका लाया गया। कारसे उतार करके, फिर कुर्सी पर बैठाकरके उनको बाबातक ले जाया गया। बाबाके पास पहुँचनेके बाद उनसे कहा गया —बाबा आपके सामने हैं।

इतना सुनते ही 'बाबा, बाबा, बाबा, बाबा' जोर-जोरसे कहकर रोने लगे। फिर अपने उपास्य संतका नाम ले लेकर, 'रघु, रघु, रघु, रघु' कह-कहकर जिस प्रकारसे अपने कपोल गीले कर लिये, वह एक विचित्र दशा थी। बाबाने उनको अपने गलेसे चिपका लिया। वह परस्परालिङ्गन भी एक अनोखा दृश्य था। दोनों परस्पर आलिङ्गन किये बहुत देर तक खड़े रहे। भाव-सरिताका भाव-सिन्धुसे मिलन, इस सम्मिलनको देखकर कई लोगोंका मन द्रवित होने लग गया। 'मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥' वे अपने साथ पुष्प-माला लाये थे। बाबाको उन्होंने पुष्प-माला पहनायी, फिर कपूरसे आरती उतारी, फिर भावभरे स्वरमें अनेक श्लोकोंके द्वारा बाबाकी स्तुति-वन्दना करते रहे। फिर उन्होंने अपने बेटेसे कहा —बेटा! बाबाकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दो।

बाबा इस प्रसङ्गको टालते रहे। कई ढङ्गसे निवारण करते रहे, पर उनकी विह्वलता सीमातीत थी। बाबाको ही झुकना पड़ा और अब इतना झुक गये कि उन्होंने कहा —आपका बेटा क्या लगायेगा, मैं ही लगा देता हूँ।

बाबाने अपनी हथेली अपने तलवोंपर फेरकर उनके मस्तपर लगा दी। श्रीश्रीवास्तवजीकी बड़ी इच्छा थी कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श करूँ, पर वे लाचार थे। श्रीश्रीवास्तवजी द्वारा निवेदन किये जानेपर बाबाने अपने चरणोंको उठाकर स्वयं ही उनकी अँगुलियोंसे स्पर्श करा दिया। फिर भावभरी आध्यात्मिक चर्चा परस्परमें चलती रही। श्रीश्रीवास्तवजीका श्रीरघुजीके प्रति समर्पण-भाव वस्तुतः आदर्श है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस श्रद्धेय संतके प्रति कोई साधक समर्पित होता है, उस श्रद्धेय संतके तिरोधानके बाद साधककी श्रद्धा शिथिल होने लगती है और कभी-कभी तो श्रद्धापर घना आवरण आ जाता है। श्रीरघुजीको गये लगभग चालीस वर्ष हो गये, पर उन श्रीरघुजीके प्रति श्रीश्रीवास्तवजीकी श्रद्धा,

उनका समर्पण अनोखा था। वे रह-रहकरके श्रीरघुजीको स्मरण करते थे और रोते थे। बाबाने उनको आश्वासन दिया – आप विश्वास करें, आपको अवध-वास अवश्य मिलेगा। आपको लिवा जानेके लिये श्रीरघुजी और उनके आराध्य श्रीरघुनाथजी आयेंगे।

बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें उनसे पूछा। हालत तो गड़बड़ थी ही। कभी पापपूर्ण पैसा तो कमाया नहीं। इसका उन्हें न कोई खेद था और न कोई कष्ट। वे कह रहे थे – बाबा! अब तो मैं हर दृष्टिसे लाचार हूँ। तनसे लाचार, धनसे लाचार और अब जगतके लिये बेकार, सर्वथा बेकार। यह भगवान्‌की बहुत बड़ी कृपा। अब भजन खूब होता है। आँख-कान-हाथ-पैर, शरीरके सभी अङ्ग बेकार हो चले हैं, अतः कौन मेरे पास आये? यह विकलाङ्गता तो मेरे लिये वरदान बन गयी है। इस विकलाङ्गताको मैं प्रभुकी बड़ी कृपा मानता हूँ। किसीके नहीं आनेसे पूर्ण एकान्त मिलता है और उस एकान्तमें अब खूब भजन होता है।

उनके उद्‌गारोंको सुन-सुनकर सभीके मस्तक नत हो गये। उनका प्रभु- विश्वास, उनका भजन-उत्साह, उनकी संत-परायणता, उनकी आस्तिक मति आदिकी कितनी सराहना की जाये? 'जो कुछ कहिअ थोर सबु तासू।'

गीता वाटिकासे जाते समय तो उनका हृदय बह चला। करुण कण्ठसे भर्राये स्वरमें अपने बेटेसे कहा – बेटा! पहले तो तू इनके चरणोंमें प्रणाम कर, फिर इनकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दे।

श्रीश्रीवास्तवजीकी भावमयताने सबको भावमें डुबा दिया। बाबाने बड़ी भावभीनी बिदाई दी। जानेके पूर्व श्रीश्रीवास्तवजीने समाधिको प्रणाम किया, फिर वही भाव-विभोरता उनके मुखपर वाणीमें उभर आयी और उन्होंने कहा – समाधिको मेरा बार-बार प्रणाम।

अब उन्होंने रोदनभरे स्वरमें रट लगा दी – बगीचेके आदमी-आदमीको प्रणाम। बगीचेके पेड़-पेड़को प्रणाम। बगीचेके एक-एक कणको प्रणाम। बगीचेकी एक-एक ईंटको प्रणाम। बगीचेके एक-एक जीवको प्रणाम। बार-बार प्रणाम। बार-बार प्रणाम।

उनके जानेके बाद बाबा अपने भावमें डूबे रहे। शहरके कुछ लोग उनके पास कुछ बात करने आये थे, परन्तु उनकी जागतिक चर्चाको

बाबाका मन- मस्तिष्क पकड़ नहीं पा रहा था। अन्तमें बात हो ही नहीं पायी। जो लोग श्रीश्रीवास्तवजीको लानेके लिये तथा पहुँचानेके लिये गये थे, बाबा उनके सौभाग्यकी बार-बार सराहना कर रहे थे। श्रीश्रीवास्तवजीके बारेमें बाबाने कहा — ऐसे संत-निष्ठ भक्तके दर्शन आजकल कहाँ हो पाते हैं? मैं तो इनकी संत- निष्ठाके समक्ष बार-बार विनत हूँ।

वस्तुतः जहाँ संत निवास करते हैं, वहाँ उनकी उपस्थितिसे एक ऐसी सुवास परिव्याप्त हो जाती है, जो तन-मनको अनिर्वचनीय सुख एवं अलौकिक शीतलता प्रदान करती है।

दिनांक १४-७-७६ को जब वे आये थे, तब वे स्वयंकी प्रेरणासे बाबाके दर्शनकी उत्कट लालसा लिये हुए आये थे, इस बार तो बाबाने ही उनको बुलाया था। पिछली बार बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। वे ऋण-ग्रस्त थे और वे रुपया चुकाना चाहते थे। वे गोरखपुरमें लगभग पाँच-छः माससे थे। उनका घर इलाहाबादमें था। गोरखपुरमें उनकी कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, उसीको बेचकर वे अपना देय चुका देना चाहते थे, परन्तु कुछ लोग अड़चन डाल रहे थे। इन सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने उनको बुलाया था, जिससे कि बाबा उनके कार्यमें कुछ सहयोग दिलवा दें।

श्रीश्रीवास्तवजीके आनेपर बाबाकी ओरसे श्रीजजसाहब (श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) ने बातचीत की। लगभग सात-आठ दिनसे बाबाकी तबीयत बहुत ही खराब चल रही थी। कंठके बगलमें कानके पास ऐसी तीक्ष्ण वेदना थी मानो रह-रहकर तीखी सुई चुभ रही हो। श्रीश्रीवास्तवजीको बहुत कम सुनता है और बाबा अपनी रुग्णता एवं दुर्बलताके कारण उच्च स्वरसे बोल नहीं सकते, अतः श्रीजजसाहबने आज बातचीत की।

ज्यों ही श्रीश्रीवास्तवजीको कुर्सीपर बैठा करके लाया गया, कुर्सीपर बैठे-बैठे ही उन्होंने बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीश्रीवास्तवजीने पूछा — यहाँ ये लोग क्यों इकट्ठे हैं? क्या कीर्तनका कार्यक्रम है? चलिये, कीर्तन किया जाये।

श्रीश्रीवास्तवजीको आज बुलानेका विशेष उद्देश्य था, अतः

विषयान्तरको बचानेके लिये श्रीजजसाहबने प्रयोजनकी बात आरम्भ कर दी। थोड़ी देर बात होनेके बाद श्रीश्रीवास्तवजीने अपने कई दिव्य अनुभव सुनाये। फिर वे श्रीजजसाहबसे कहने लगे – आप तो बाबासे मेरी ओरसे यही प्रार्थना कर दें कि मेरे द्वारा निरन्तर भजन हो। भगवान् श्रीसीतारामजीमें अविचल भक्ति हो। यह सांसारिक झंझट मेरे लिये कोई झंझट नहीं है। बस, किसी प्रकार श्रीरघुनाथजीमें रति हो जाये।

बाबा अपने बिस्तरपर आधे लेटे हुए श्रीश्रीवास्तवजीके वे सब अनुभव सुन रहे थे तथा श्रीजजसाहबके माध्यमसे किया गया निवेदन भी सुन रहे थे। उनकी प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको अपनी ओर खींच लिया। भले वे सांसारिक परिस्थितिमें उलझे हैं, पर उस उलझनसे क्या? उस उलझनसे उनकी उपरामता तथा प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको बोलनेके लिये बाध्य कर दिया। बाबाकी अस्वस्थता बाबाके लिये नगण्य हो गयी। श्रीश्रीवास्तवजीके पास आकर बाबाने कहा – बस, आप तो सदा यही कहते रहें, रटते रहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू चकोर मोहिं कीजै'।

पंक्तिके शब्दोंको श्रीश्रीवास्तवजी ठीक प्रकारसे सुन नहीं पाये। अतः बाबाने जोर-जोरसे बोलकर एक-एक शब्द सुनाया तथा याद करवाया। श्रीश्रीवास्तवजीने कहा – बाबा! अब तो ऐसी कृपा करें कि मन जगतमें न जाये, सदा श्रीसीतारामजीमें लगा रहे।

जोरि पानि बर माँगहु एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।।
बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते बिपति सहौं अति दारुन जनमत जोनि अनेक।।
कृपा डोरि बंसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहुँ दुख मेरो, कौतुक राम तिहारो।।

बस, बाबा! अब आप ऐसी ही कृपा कर दें।

तब बाबा उनके कानके पास अपना मुँह लगाकर ऊँचे स्वरसे कहने लगे – क्या आपको विश्वास नहीं मेरी बातपर, जो आपको पिछली बार कही थी? उससे बड़ी कृपा और क्या हो सकती है? आप विश्वास करें, चाहे सूर्य अपने पथसे टल जाये, चाहे चन्द्रमा अपने पथसे टल जाये, कलके बजाय आज टल जाये, पर मेरी बात मिथ्या नहीं हो

सकती। आपकी मृत्युके समय भगवान श्रीरामचन्द्रजी आपको लेने अवश्य आयेंगे।

श्रीश्रीवास्तवजीके इस सौभाग्यको देखकर हम सभी आश्चर्य करने लगे। पर आश्चर्य भी क्या किया जाये? जिनने विरही संत श्रीरघुजी जैसे सच्चे भगवत्प्रेमीको अपने जीवनका सर्वस्व माना, जिनने भगवच्चरणारविन्दवत् संत-चरणोंकी आजीवन सेवा की, उन पूत आत्माको ऐसा आशीर्वाद मिले तो क्या आश्चर्य? यह आशीर्वाद तो पिछली बार ही मिल चुका था, अब तो उसपर और भी पक्की मोहर लग गयी। ऐसे आशीर्वादको पाकर श्रीश्रीवास्तवजीका हृदय गद्गद हो गया। उन्होंने भाव-भरे हृदयसे पूर्वकी भाँति ही बाबाको पुष्प माला पहनायी, आरती उतारी, धूप प्रदर्शित की तथा श्लोकोंसे वन्दना की। इसके बाद वे बाबाके चरणोदकके लिये आग्रह करने लगे। वे अपने साथ जल-पात्र लाये थे। बाबाने कहा — आप चरणोदक क्या लेंगे? पिछली बार ही आपके रोम-रोमको ऐसा अमृतोदक पिला दिया है कि फिर-फिर पीनेकी जरूरत ही नहीं।

श्रीश्रीवास्तवजीने अपने आग्रहको छोड़ दिया। अब वे घर वापस जानेवाले हैं। उन्होंने पूछा — जिस कटोरीसे कपूरकी आरती उतारी थी, वह कटोरी कहाँ है?

श्रीजजसाहबने प्रश्न किया — क्यों?

श्रीश्रीवास्तवजीने श्रद्धाभरे स्वरमें कहा — उसमें काजल है। बाबाको की गयी आरतीका काजल है। वह मैं लगाऊँगा।

उनकी इस संत-निष्ठाको देखकर हमलोग मन-ही-मन उनकी सराहना करने लगे। बाबा बोले तो धीरेसे, पर हमारे कानोंमें भनक पड़ गयी — इसे भावमयता कहते हैं।

श्रीश्रीवास्तवजीने वह काजल अपनी पंगु अँगुलीसे अपनी आँखोंमें आँजा और कहने लगे —

> जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
> कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।।

फिर एक विनोदकी बात हुई। श्रीश्रीवास्तवजी श्रीजजसाहबसे

कहने लगे – देखिये, अब इस काजलकी एक बिंदी अपने ललाटपर भी लगा रहा हूँ। बाबासे इतनी बड़ी सम्पत्ति मिली है, कोई नजर न लगा दे।

इस पर सभी हँस पड़े। बाबाने उनसे फिर कहा – आप तो बार-बार यही कहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै।' यह पंक्ति गोस्वामी तुलसीदासजीकी है।

श्रीश्रीवास्तवजीने इस पंक्तिको कई बार कहा। कहा ही नहीं, उच्च स्वरसे इस पंक्तिका कीर्तन करने लगे।

बाबाके पाससे विदा होकर उन्होंने समाधिके पास चलनेकी इच्छा व्यक्त की। कुर्सीपर बैठे-बैठे उनको समाधिके पास लाया गया। उन्होंने समाधिकी आरती उतारी, धूप खेया, पुष्प-माला अर्पित की तथा दो परिक्रमा दी। इसी प्रकार जिस कमरेमें विरही संत श्रीरघुजी रहा करते थे, उस कमरेका दर्शन किया, उसकी आरती उतारी, धूप खेया और उसे प्रणाम किया।

उनके जानेके पहले मैंने उनसे पूछा – आपको श्रीरघुजीके सर्व प्रथम दर्शन कब हुए थे?

उन्होंने बताया – मैं देवरिया शहरमें काम करता था। श्रीभाईजी (रस-घन-मूर्ति पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संदेश मेरे पास पहुँचा कि श्रीरघुजी गोरखपुरसे चित्रकूट जा रहे हैं, रेलगाड़ी देवरिया होते हुए जायेगी, अतः आप चाहें तो रेलगाड़ीपर उनका दर्शन कर लें। मैं स्टेशन गया तथा आग्रह करके रेलगाड़ीसे उतार कर अपने घर ले आया। देवरिया उतरनेका कोई कार्यक्रम नहीं था, उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली, यह मेरा सौभाग्य था।

मैनें फिर पूछा – श्रीरघुजी द्वारा पूजित श्रीचित्रपटकी पूजा आजकल कौन करता है?

उन्होंने कहा – अब तो घरपर बहू ही करती हैं। घरपर वही है। पूजा घरमें तो अनेक विग्रहोंकी पूजा होती है।

मैंने पूछा – यह चित्रपट आपको कैसे मिला?

उन्होंने बताया – मैं वाराणसीमें काम करता था। तब श्रीभाईजी राजस्थानके रतनगढ़ शहरमें रह रहे थे। उधर श्रीरघुजीने स्वप्नमें उनसे निवेदन किया कि श्रीरामचतुष्टयका चित्र मेरे पास पहुँच दिया जाये।

इधर मुझे स्वप्न हुआ कि वे कम्बलपर बैठे हुए हैं, आँखोंसे अविरल अश्रुधार बह रही है और कह रहे हैं कि श्रीरामचतुष्टयका श्रीचित्रपट श्रीभाईजीके पाससे मँगाकर अपनी पूजामें रख लो। ज्यों ही श्रीभाईजीको स्वप्न हुआ, उन्होंने एक विशेष व्यक्तिके हाथ वह चित्रपट तुरंत मेरे पास वाराणसी भेज दिया। हम दोनों पूजा किया करते थे, पर अब पत्नी तो रही नहीं तथा मैं पंगु हो गया। घरमें पूजा बच्चे सब किया करते हैं।

* * * * *

लकवा का झटका

सन् १९७७ की २० अगस्तको शनिवार था। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको नियमके अनुसार शनिवारके दिन बाबाको जतीपुरासे राधाकुण्ड तककी पाँच मीलकी परिक्रमा करनी थी। इन दिनों शारीरिक दुर्बलताके कारण बाबाको पाँच मीलकी परिक्रमाके दो भाग करने पड़ते थे। तीन मील सबेरे तथा शेष दो मील सूर्यास्तके बाद, इस प्रकार बाबा पाँच मीलकी परिक्रमा पूरी करते थे।

२० अगस्त शनिवारकी रातमें बाबाने श्रीगिरिराजजीकी शेष दो मीलकी परिक्रमा लगानी आरम्भ की। तीन मीलकी परिक्रमा बाबा प्रातःकाल कर चुके थे। शेष दो मीलकी परिक्रमाको रात्रिके समय सम्पन्न कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते बाबाको ऐसा लगा कि दाहिना पैर शून्यतासे ग्रस्त होता जा रहा है। शून्यताकी तीव्र अनुभूति होनेके बाद भी अपने आत्मबलके सहारे बाबा परिक्रमा पूर्ववत् देते रहे। दो फेरी और लगा चुकनेके बाद उनको ऐसा लगा मानो कमरसे नीचेका भाग शरीरसे अलग हो गया है और कमरसे ऊपरका भाग नीचे पृथ्वीकी ओर बलात् खिंचता चला जा रहा है। ठीक आगे दो कदमपर दीवाल थी। बाबाने सोचा कि दीवालका सहारा ले लूँ, पर तभी धम्मसे गिर पड़े। परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित लोगोंने सोचा कि सिरमें चक्कर आ गया है, अतः बाबा बैठ गये हैं, पर यह भ्रम कबतक बना रहता? ज्यों ही लोगोंको पता चला कि बाबाके दाहिने पैरको लकवा मार गया है, सभीका मन खिन्नतासे भर गया। परिक्रमा विसर्जित कर दी गयी। गम्भीर उदासीसे वाटिकाका सारा वातावरण ऐसा आच्छादित हो गया कि क्या

कहा जाये ?

उस परिस्थितिमें भी बाबाके मुखमण्डलपर वही सहज हास्य था, वही सहज उल्लास था, पर उनका वह उन्मुक्त उल्लास भी वातावरणमें व्याप्त उदासीकी सघनताको न हटा सका, न घटा सका। दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन, मिलनेवालोंका ताँता लगा रहा।

आत्मीय जनोंकी अत्यधिक क्लान्तिको देखकर बाबाने भिक्षाके अतिरिक्त थोड़ा दूध लेना आरम्भ कर दिया तथा मदार-धतूरा आदिके पत्तोंसे सेक करवा लेने लगे। आहारमें भी कुछ परिवर्तन कर देनेके लिये अनुमति प्रदान कर दी। बात-बातके बीचमें बाबा तो कई बार कह जाते थे – मेरा मन सर्वथा संकल्पशून्य है। न तो यही स्फुरणा है कि यह रोग क्यों हुआ और न यही कामना है कि रोगसे मुक्त होऊँ। रोगके रूपमें भगवान ही पधारे हैं।

बाबाके यतिधर्मको ध्यानमें रखते हुए विविध उपचार हो रहे थे, पर अपेक्षित सुधार दिखलायी नहीं दे रहा था। सभी स्वजनोंका चित्त बड़ा व्याकुल था, पर वह व्याकुलता विवशताके घेरेमें घुट-घुट करके चुपचाप आँसू बहाती रहती थी।

इस व्याकुलताको थोड़ी राहत मिली श्रीमहाराजजीके शुभागमनसे। स्वयं महाराजजीके मनमें बाबाके समीप पहुँचनेकी चटपटी लगी हुई थी। महाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका १४ सितम्बरको पधारे और ऐसा उद्घोषित करनेके लिये मेरी भावना बार-बार उमड़ रही है कि महाराजजीके पदार्पणके रूपमें बाबाके स्वास्थ्यका शुभागमन हुआ। मैं नहीं जानता कि परोक्ष स्तरपर क्या तथ्य है और क्या सत्य है, पर प्रत्यक्ष रूपमें इतना तो सही ही है कि जिस दिन महाराजजी पधारे, उसी दिनसे बाबाके स्वास्थ्यमें आशातीत सुधार आरम्भ हो गया। इस सुधारका सारा श्रेय तो चल रही चिकित्सा-पद्धतिको मिल गया, पर प्रश्न उठता है कि यह श्रेय महाराजजीके आगमनसे पहले उसे क्यों नहीं मिल पाया? बुद्धिका विलास तो इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे पायेगा, परन्तु श्रद्धाकी निरीहता इस प्रश्नको प्रश्न मानती ही नहीं। संत-जगतमें लोकातीत स्तरवाली जो प्रक्रिया सक्रिय रहती है, उसकी गतिविधि बड़ी विचित्र होती है और वह मात्र अनुभव गम्य है। जो भी हो, बाबाके स्वास्थ्यमें सुधारसे सभीकी भावनाओंको बड़ा विश्राम मिला। बाबाके स्वास्थ्यकी

चिन्ताजनक स्थितिने सबके मनमें एक उलझन खड़ी कर दी थी कि आगामी श्रीराधाष्टमीमें भावपरिपोषक महोत्सवका स्वरूप न जाने कैसा रहेगा और न जाने कैसी खिन्नताके वातावरणमें महोत्सवके कार्यक्रम सम्पन्न होंगे, पर स्वास्थ्य-सुधारकी प्रगतिने सुगति दे दी सभीकी भावनाओंको। महाराजजीके शुभागमनके बाद बाबाके स्वास्थ्यमें जैसा सुधार आया, उससे गीतावाटिकामें क्रमशः अधिकाधिक प्रसन्नता परिव्याप्त होने लग गयी। बाबा तो अपनी कुटियामें ही विराजे रहे, पर महाराजजी उत्सव-पण्डालमें पधारे और श्रीराधाष्टमी-महोत्सव २०-९-१९७७ को सोत्साह मनाया गया था।

* * * * *

नियमानुवर्तन में सीमातीत तत्परता

संन्यास लेते ही बाबाने एक बड़ा ही कठोर व्रत ले लिया कि अब जीवनमें स्त्री-स्पर्श एवं द्रव्य-स्पर्श करना ही नहीं है। यदि स्पर्श हो गया तो प्रायश्चित रूपमें चौबीस घंटेका उपवास करना है। सन् १९५६ में तीनों धामोंकी पावन यात्रा ट्रेन द्वारा की गयी थी। ट्रेनमें लगभग छ या सात सौ तीर्थ-यात्री थे। तीर्थ-यात्रियोंमें स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। देव-दर्शनके लिये यत्र-तत्र आना-जाना पड़ता ही था। बहुत सावधान रहनेके बाद भी वे अप्रिय प्रसंग घटित हो गये, जिससे बाबाको उपवास करना आवश्यक हो गया और क्रम-क्रमसे बाबापर नब्बे उपवास चढ़ गये। तीर्थ-यात्राकी भाग-दौड़में उपवास सम्भव नहीं हो पाया। तीर्थ-यात्रासे लौटनेके बाद उन सारे उपवासोंको एक-एक करके बाबाने चुकाया। कुछ दिनोंका अन्तर दे-दे करके बाबाने नब्बे दिन उपवास किया।

नियमानुर्वतनके प्रति बाबा सदैव तत्पर रहा करते थे। २२ नवम्बर १९७८ के दिनका एक प्रसंग है। प्रातःकाल बाबा अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। बाबाके पास ठाकुरजी भी थे। तभी एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया। बिहार प्रदेशसे आये हुए एक साधुने श्रद्धावशात् बाबाके चरणोंपर पाँच रुपयेका एक नोट चढ़ा दिया। उन साधुको बाबाके कठोर नियमका पता नहीं था कि द्रव्यका या स्त्रीका स्पर्श होते ही चौबीस घंटेका उपवास करते हैं। उस नोटसे स्पर्श होते ही बाबाके लिये तो